सफलता
के मौलिक सूत्र

मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ
(एम॰ ए॰)

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

अल्लाह के नाम से जो बड़ा कृपाशील, अत्यन्त दयावान है।

दो शब्द

प्रस्तुत पुस्तक में इस्लामी जगत् के महान विद्वान मौलाना मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ द्वारा लिखे गए 32 लेख सम्मिलित किए गए हैं जो विभिन्न विषयों से सम्बन्ध रखते हैं। लेकिन विचार और आचरण आदि के प्रशिक्षण की दृष्टि से इनमें बड़ी समानता पाई जाती है।

जीवन में ज्ञान को मौलिक महत्त्व प्राप्त है। इस पुस्तक में ज्ञान के सम्बन्ध में बताया गया है कि ज्ञान कैसे और कहाँ से प्राप्त किया जाता है और सब से अधिक विश्वसनीय और महत्त्वपूर्ण ज्ञान किसे कहेंगे।

मानव-जीवन जिन मौलिक विचार और भाव-तत्त्व से निर्मित होता है यदि उनका ध्यान न रखा जाए तो जीवन असन्तुलित होकर रह जाता है या फिर पथ भ्रष्टता के अतिरिक्त आदमी के हिस्से में और कुछ नहीं आता।

तत्वदर्शिता (Wisdom) के बिना जीवन में गहराई नहीं आ सकती। तत्वदर्शिता क्या है? इस विषय में भी स्पष्ट रूप से विचार व्यक्त किया गया है।

व्यक्तित्व का निर्माण मनुष्य के लिए आवश्यक है। व्यक्तित्त्व के निर्माण के लिए किन बातों की ओर ध्यान देना होगा? किसी के महान पुरुष होने के क्या लक्षण हो सकते हैं? हमारा सम्बन्ध स्वयं अपने और जनसामान्य के साथ और ईश्वर के साथ कैसा हो? इसका स्पष्टतः हमें ज्ञान होना चाहिए।

ईमान क्या है? आदमी अपने ईमान की जाँच कैसे करे? अपने परिवार और समाज के साथ उसका व्यवहार कैसा हो? हास्य-विनोद का महत्व और उसकी सीमाएँ क्या हैं? जीवन में सौन्दर्य-बोध को क्या स्थान प्राप्त है? जीवन की वास्तविक उपलब्धि किसे कहेंगे? ऐसी ख़राबियाँ क्या हो सकती

हैं जो साधारणतः दिखाई नहीं देतीं लेकिन हैं वे ख़राबियाँ ही? इन विषयों और इनके अतिरिक्त अन्य कई महत्त्वपूर्ण विषयों पर प्रकाश डालने की भी इस पुस्तक में कोशिश की गई है।

इस पुस्तक में विभिन्न विषयों पर जो विचार व्यक्त किया गया है उसके अध्ययन से पाठकों की चिन्तन-शक्ति में अभिवृद्धि होगी और वे जीवन के प्रति उदासीन नहीं रह सकते।

'प्रस्तुत पुस्तक' के ये लेख हिन्दी की एक मासिक पत्रिका में भी प्रकाशित हो चुके हैं। अब इन लेखों को एकत्र करके पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है।

इस्लामी साहित्य ट्रस्ट (रजि॰) हिन्दी भाषा में इस्लामी शिक्षाओं पर किताबें तैयार करने की सेवा में लगा हुआ है। इस किताब को प्रस्तुत करने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ इस पर हम ख़ुदा का शुक्र अदा करते हैं। इस बात की पूरी कोशिश की गई है कि पुस्तक में भाषा एवं प्रूफ़ आदि की कोई त्रुटि न रहे। फिर भी यदि कोई त्रुटि पाई जाए तो हमें अवश्य सूचित करें ताकि उसका सुधार किया जा सके। इसके लिए हम आपके आभारी होंगे।

इस पुस्तक को भाषा और प्रूफ़ आदि की दृष्टि से बेहतर से बेहतर बनाने का शुभ कार्य जनाब कौसर लईक़ साहब, जनाब ख़ालिद निज़ामी साहब और जनाब मुहम्मद शुऐब साहब के द्वारा किया गया। हम इन सभी भाइयों के आभारी हैं।

ईश्वर हमारे इस प्रयास को स्वीकृति प्रदान करे। यही उससे हमारी प्रार्थना है। हम उसी पर भरोसा रखते हैं और उसी से सहायता की कामना करते हैं।

भवदीय

नसीम ग़ाज़ी फ़लाही
सेक्रेट्री
इस्लामी साहित्य ट्रस्ट
(दिल्ली)

21/04/2011

विषय-सूची

क्र॰ सं॰	विषय	पृ॰ सं॰
1.	ज्ञान के स्रोत	7
2.	धार्मिकता की तीन श्रेणियाँ	12
3.	जीवन के तीन मौलिक तत्व	15
4.	हिक्मत	18
5.	वाणी	21
6.	व्यक्तित्व का निर्माण	24
7.	पुरुषार्थ	27
8.	महानता	31
9.	अभीष्ट गुण और क़ुरआन	36
10.	चरित्र-बल	42
11.	ईमानः पहचान और परीक्षा	44
12.	ज़िन्दगी का एक ख़ास क़ानून	48
13.	धर्म के आन्तरिक लक्षण	51
14.	सम्बन्ध	54
15.	परिवार	58
16.	समाज	63
17.	सम्पर्क	67
18.	परेशानियों का मूल कारण	70
19.	अल्लाह का ज़िक्र	74

20.	भाव	79
21.	ख़राबियाँ जो दिखाई नहीं देतीं	83
22.	चेतना के स्तर	88
23.	ज्ञान की श्रेणियाँ	92
24.	क़ुरआन की विशिष्टता	95
25.	प्रशिक्षण	98
26.	आर्य सत्य	101
27.	सौंदर्य	106
28.	निधियाँ	111
29.	हास्य-विनोदः महत्व और सीमाएँ	115
30.	भक्तिः कुछ महत्वपूर्ण पहलू	118
31.	क्या खोया जिसका एहसास नहीं	122
32.	वास्तविक उपलब्धि	126

❖ ❖ ❖

1

ज्ञान के स्रोत

(1) प्रत्यक्ष (Self Evident)

(2) तर्क (Logic)

(3) प्रकाशना (Revelation or Divine Inspiration)

ज्ञान ही है जिसके कारण मनुष्य को धरती में विशिष्टता प्राप्त है। पशु-पक्षी को वह ज्ञान नहीं और न उस ज्ञान के ग्रहण करने की उनमें योग्यता एवं क्षमता ही पाई जाती है, जिस ज्ञान के प्राप्त करने की योग्यता एवं क्षमता मनुष्य में विद्यमान है। इसी योग्यता एवं क्षमता के बल पर मनुष्य ने भौतिक दृष्टि से बड़ी उन्नति की है। ये वायुयान, ट्रेन और यातायात के अनेक साधन उसने जुटाए। भवन-निर्माण कला और साहित्य के क्षेत्र में भी उसने अपनी असाधारण योग्यता का परिचय दिया है। विज्ञान के क्षेत्र में भी अपने प्रयोग (Experiment) और अनुसंधान (Research) के द्वारा उसने विद्युत एवं अणु शक्ति (Atomic Energy) का पता लगाया। विचार और चिन्तन के क्षेत्र में भी उसके कार्य ऐसे हैं जो किसी चमत्कार से कम नहीं हैं।

मनुष्य की अपेक्षा पशु-पक्षी और अन्य जीव-जन्तु आज भी उसी स्तर पर जी रहे हैं जिस स्तर पर करोड़ों वर्ष पूर्व जी रहे थे।

मनुष्य के ज्ञान के तीन स्रोत हैं— जब तक वह इन तीनों स्रोतों से लाभ नहीं उठाता, वह उन्नति के उस शिखर पर नहीं पहुँच सकता जो उसकी प्रतीक्षा कर रहा है। मुख्य रूप से ज्ञान के जो तीन स्रोत स्वीकार किए गए हैं वे क्रमशः ये हैं—

1. प्रत्यक्ष (Self Evident)

2. तर्क (Logic)

3. प्रकाशना (Revelation or Divine Inspiration)

1. प्रत्यक्ष स्रोत (Self evident)

संसार में जो चीज़ें हम देखते हैं यह देखना ही उनके होने का प्रमाण है। सूर्य निकला है, उसे हम अपनी आँखों से देख रहे हैं कि वह चमक रहा है। अब हमें इसकी ज़रूरत महसूस नहीं होती कि कहीं से सूर्य के उदय होने का प्रमाण हाथ आ जाए ताकि हम इस सच्चाई पर भरोसा कर सकें कि सूर्य चमक रहा है। वर्षा हो रही है, हम भीग रहे हैं। बिजली कड़क रही है, आकाश बादलों से घिरा हुआ है— यह सब कुछ हमारी आँखों के सामने है। ये सब हमारे ज्ञान में प्रत्यक्षतः आ जाते हैं। इनसे हमारे ज्ञान में अभिवृद्धि होती है। बहुत-सी चीज़ों को हम अपनी आँखों से देखकर जान लेते हैं और उनके विषय में हमें संदेह नहीं होता।

इस स्रोत द्वारा जो ज्ञान हमें प्राप्त होता है ऐसा नहीं है कि वह महत्वपूर्ण न हो, किन्तु इस स्रोत से प्राप्त ज्ञान ही हमारे लिए पर्याप्त नहीं होता। इसी लिए हम ज्ञान के अन्य स्रोत का भी सहारा लेते नज़र आते हैं। ज्ञान का दूसरा स्रोत है तर्क।

2. तर्क (Logic)

अर्थात् बुद्धि और विवेक के द्वारा भी हम अपने ज्ञान-भण्डार को बढ़ाते और अपनी जिज्ञासा को शान्त करते नज़र आते हैं। बुद्धि, विवेक अथवा तर्क के द्वारा जो कुछ हमें ज्ञान प्राप्त होता है वह प्रत्यक्ष तथ्य ज्ञान से भिन्न होता है। यह ज्ञान वास्तव में प्रत्यक्ष में विचार और मनन करने से प्राप्त होता है। क़ुरआन में है कि ईमानवाले आसमान और धरती की संरचना में विचार करते हैं और पुकार उठते हैं कि यह सब कुछ निरर्थक नहीं हो सकता। इसका कोई वास्तविक परिणाम भी सामने आनेवाला है। क्योंकि यह जगत जितना दिखाई देता है उससे अधिक की सूचना दे रहा है। इसका परिणाम भयावह भी हो सकता है। वे बुरे परिणाम से बचने के लिए प्रार्थनाएँ करने लग जाते हैं। (क़ुरआन, 3:190-191)

जगत् में कितना संगीत है। पत्ते-पत्ते से सौंदर्य झाँकता है। पक्षियों के कण्ठ मानो संगीत से भर दिए गए हैं। इस महिमामय जगत् का अवश्य कोई

चितेरा होगा। जब जगत् में इतना सौंदर्य बरस रहा है तो यह सौंदर्य बिना मूल स्रोत के नहीं हो सकता और वह स्रोत भी आभामय होगा। यह तर्क है किन्तु शुष्क तर्क नहीं। इस तर्क में हृदय की प्रतीति भी सम्मिलित हो गई है। यह कोई सिद्धान्त भी नहीं। हम किसी बाग़ के निकट होते हैं, हालाँकि बाग़ को देख नहीं रहे होते, लेकिन बाग़ से होकर आनेवाली हवाओं के साथ जो सुगन्ध होती है, वह बाग़ या पुष्प वाटिका की सूचना दे रही होती है। बाग़ से हम जितना निकट होते जाते हैं, फूलों की सुगन्ध की भिन्नता को भी हम महसूस करने लगते हैं कि यह गुलाब की सुगन्ध है, यह बेला की। हालाँकि बाग़ और उसके फूल अब भी निगाहों से ओझल होते हैं।

तर्क में हम बुद्धि से काम लेते हैं। हम देखते हैं कि जगत में चारों ओर बल्कि स्वयं हमारे शरीर की संरचना में भी अपार ज्ञान और अनुकम्पा की प्रतीति होती है। बुद्धि कहती है कि ज्ञान है तो कोई ज्ञानवान सत्ता भी होगी। अनुकम्पा है तो अनुकम्पा करनेवाला कोई ईश्वर भी होगा। तर्क के माध्यम से जो ज्ञान हम अर्जित करते हैं, उसका बड़ा महत्व है। किन्तु बुद्धि और तर्क के द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है, संवेदनशील व्यक्ति उससे सन्तुष्ट नहीं हो सकता। इससे जो ज्ञान भी प्राप्त होगा वह अधूरा होगा। इसका कारण यह है कि एक तो हमारी बुद्धि की शक्ति और सामर्थ्य अत्यन्त सीमित है। दूसरे, तर्क द्वारा जिस ज्ञान की प्राप्ति होती है उसमें यह लगा होता है कि कहीं ऐसा न हो कि हम धोखा खा रहे हों और सत्य कुछ और हो। वह सत्य को यथासम्भव पूर्ण रूप से और निकट से जानना चाहता है। बुद्धि इस बारे में उसकी ज़्यादा सहायक नहीं हो सकती क्योंकि उसकी अपनी एक सीमा है जिससे वह बाहर जा नहीं सकती। इसके अतिरिक्त मस्तिष्क (Brain) की ही नहीं हृदय (Heart) की स्वीकृति के बिना परितोष की आशा नहीं की जा सकती। इसलिए मनुष्य तर्क के अतिरिक्त ज्ञान और अनुभव के लिए अन्य स्रोत की आशा करता है और वह स्रोत है, प्रकाशना।

3. प्रकाशना (Revelation or divine Inspiration)

इससे सत्य स्वयं मानव के लिए अनावृत होता है। यह ज्ञान परमात्मा की ओर से प्रदान किया जाता है। परमात्मा की ओर से प्राप्त होनेवाले ज्ञान

में किसी सन्देह की गुंजाइश नहीं होती। ईश्वर के प्रदान किए हुए ज्ञान का स्वभाव ही ऐसा होता है कि मनुष्य हर प्रकार के सन्देह और तृष्णा से मुक्त हो जाता है। अब वह शान्त होगा और नित्य अपने आराध्य के सम्पर्क में होगा, इससे उसके जीवन में जो परिवर्तन आएगा, वह अत्यन्त सराहनीय होगा। पैग़म्बरों के माध्यम से हम इस स्रोत से लाभान्वित हो सकते हैं। पैग़म्बरों के माध्यम से ईश्वर मानवों को पूर्ण ज्ञान देता और उनका मार्गदर्शन करता है। ज्ञान का यह स्रोत अलौकिक होता है, भौतिकता का इसमें कोई हिस्सा नहीं होता। आसमानी किताबें पैग़म्बरों पर इसी माध्यम से अवतरित होती हैं। जैसा कि ऊपर आ चुका है यह स्रोत अलौकिक है। तर्क में हम बुद्धि और विवेक का सहारा लेते हैं। पैग़म्बर दुनिया में इसी लिए आते हैं कि दुनिया ज्ञान के इस स्रोत से वंचित न रहे और उसे वह ज्ञान मिल सके जो हर प्रकार के सन्देहों और संशयों से मुक्त हो और मनुष्य का सत्य से पूर्णतः सम्बन्ध स्थापित हो सके। पैग़म्बर अपने अनुयायियों के लिए नेत्र के सदृश होता है जिससे वे देखते हैं। पैग़म्बर अपने अनुयायियों के लिए विमल हृदय के सदृश होता है, जिससे सच्चाई का उन्हें निकट से अनुभव होता है। पैग़म्बर का चरित्र इतना पवित्र और उच्च होता है कि स्वभावतः उसके प्रति हममें ऐसी श्रद्धा और प्रेम जागृत हो जाता है, जिसकी मिसाल नहीं मिलती। वह हमारे लिए अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय होता है। उसका आदर और उसका अनुपालन हमारा परम कर्तव्य होता है।

उच्च स्तर पर प्रकाशना और इलहाम का अनुभव तो पैग़म्बर को ही होता है किन्तु इसका अनुभव किसी न किसी दर्जे में ईश्वर हमें भी करा देता है, ताकि ज्ञान के इस महत्वपूर्ण स्रोत का एक दर्जे में हमें भी आभास हो जाए और ज्ञान के इस स्रोत पर, जिसका पैग़म्बरों से पूर्णत : सम्बन्ध होता है, हमको भरोसा हो सके। इस तरह के अतीन्द्रिय माध्यम का अनुभव उस समय होता है जब हमें किसी चीज़ का स्वतः ज्ञान हो जाता है। इसके पीछे न हमारी बुद्धि काम कर रही होती है और न इसके लिए कोई लौकिक बाह्य साधन ही उपलब्ध होता है। उदाहरणार्थ भविष्य में घटित होनेवाली किसी घटना को स्वप्न में हम पहले ही देख लेते हैं। यह कैसे सम्भव होता है। इस

बारे में इसके सिवा और क्या कहा जा सकता है कि हमारे नेत्र, कान आदि इन्द्रियों के अतिरिक्त अतीन्द्रिय साधन हैं। ज्ञान के जाने-पहचाने स्रोतों ही को ज्ञान का अन्तिम स्रोत समझना हमारी भूल है। स्वप्न के अतिरिक्त जागृत अवस्था में भी आदमी के दिल में अचानक कोई बात ऐसी आ जाती है जो बहुमूल्य होती है और उसके लिए वह बात अत्यन्त नवीन होती है। इसके पूर्व उसके विषय में उसने कभी सोचा भी न था और उसने कभी कल्पना भी न की थी। इससे पता चलता है कि जीवन में मात्र वही कुछ नहीं है जिससे साधारणतः लोग परिचित होते हैं। अतः ज्ञान के उस स्रोत की उपेक्षा करना अक्षम्य अपराध है जिस स्रोत से ज्ञानयुक्त होकर पैग़म्बरों ने हमारा मार्गदर्शन किया है।

❖❖❖

2

धार्मिकता की तीन श्रेणियाँ

(1) आस्था (Faith)
(2) बुद्धि एवं विवेक का इस्तेमाल (Use of logics)
(3) अलौकिक प्रकाश (Vision)

धार्मिकता की वास्तव में तीन श्रेणियाँ हैं। किन्तु इसकी ओर साधारणतया ध्यान नहीं दिया जाता, जिसके कारण हम धार्मिकता के भेदों (Kinds) को नहीं जान पाते।

धार्मिकता की पहली श्रेणी वह है जिसे हम सादा ईमान या आस्था कह सकते हैं। इस श्रेणी की धार्मिकता बस यह होती है कि आदमी नबियों की दी हुई इस सूचना पर विश्वास रखता है कि ईश्वर है, वही सबका और सम्पूर्ण जगत् का स्रष्टा है। मरने के पश्चात् उसी के पास जाना है, वह हमारे कर्मों के अनुसार हमें पुरस्कृत करेगा या दण्ड देगा। ईश्वर के आज्ञाकारी और नेक बंदे वही हैं जो उसकी अवज्ञा से बचते और उसकी प्रसन्नता के कार्य से मुँह नहीं मोड़ते। ईश्वर से डरते रहते हैं और उसकी अनुकम्पा की चाहत में जीवन व्यतीत करते हैं। उन्हें जीवन से अच्छी आशा होती है लेकिन यह भय भी उनके दिल से नहीं निकलता कि कहीं किसी खोट के कारण हमारी नेकियाँ रद्द न कर दी जाएँ और हमें दोज़ख़ की सज़ा भुगतनी पड़े।

सारांश यह कि वे समझते हैं कि दुनिया में वे हमेशा रहने के लिए नहीं आए हैं, अन्ततः उन्हें ईश्वर ही के पास जाना है। दुनिया में उन्हें अपने कर्म से सिद्ध करना है कि उन्हें न ईश्वर का इनकार है और न ईश्वर के पैग़म्बरों पर ईमान लाने से वे इनकार करते हैं। वे यह भी मानते हैं कि ईश्वर के यहाँ उन लोगों का ठिकाना बुरा होगा जो उसे या उसके आदेशों को रद्द करते हैं और स्वयं को स्वतन्त्र समझते हुए जीवन व्यतीत करते हैं।

धार्मिकता की दूसरी श्रेणी यह है कि मनुष्य केवल सादे ढंग से सत्य को

स्वीकार न करता हो बल्कि वह बुद्धि और विवेक से भी काम लेता हो। सत्य या सत्यधर्म को उसने केवल इसलिए स्वीकार न कर लिया हो कि कुछ ऐसे लोग, जिन्हें वह अच्छा समझता है, उसे मानते हैं। बल्कि वह स्वयं सोच-विचार करता और ईश्वर-प्रदत्त बुद्धि एवं विवेक से सत्यधर्म की सत्यता और उसकी अर्थमयता और मानव जीवन में उसकी आवश्यकता और उसके महत्व को समझता हो। वह चिन्तन-शक्ति और बुद्धिमत्ता की क्षमता को निरर्थक नहीं समझता बल्कि वह इससे काम लेकर न केवल यह कि धर्म को अंगीकार करता है बल्कि वह धार्मिकता का एक प्रत्यक्ष उदाहरण बन जाता है। सत्य के स्वीकार करने में उसने केवल यही नहीं कि उन पैग़म्बरों का अनुसरण किया जिनके प्रति प्रेम और आदर भाव उनके अनुयायियों के मन में पाया जाता है। उसकी यह विशिष्टता है कि वह बुद्धि और विवेक को निरर्थक नहीं समझता और न उसे यह पसन्द है कि वह इनसे कोई काम न ले, बल्कि वह अपनी बुद्धि और चिन्तन-शक्ति को भी सन्तुष्ट देखना चाहता है। वह जानता है कि ईश्वर ने सोचने-समझने की योग्यता यूँ ही नहीं दी है कि कोई हमसे काम न ले। दूसरे यह कि वह यह भी जानता है कि धार्मिकता के विषय में यदि समझ और तत्वदर्शिता प्राप्त नहीं है तो धार्मिक होते हुए भी हम धार्मिकता के सच्चे गुणग्राहक नहीं हैं। हमारी धार्मिकता इस स्थिति में शुद्ध हृदयता एवं निष्कपटता के बावजूद उच्च श्रेणी की नहीं हो सकती। और यदि कहीं बुद्धि और मन के भाव और धार्मिकता के मध्य एकात्मता और आत्मीयता नहीं पाई जाती फिर भी हम धर्म से जुड़े रहते हैं तो हमारा व्यक्तित्व एक न होगा। बल्कि हमारा व्यक्तित्व दोहरा होगा और उन दोनों में शीतयुद्ध चलता रहेगा या फिर उसकी धार्मिकता अवसरवादिता के अतिरिक्त और कुछ न होगी।

धार्मिकता की एक तीसरी श्रेणी भी है। यह वह श्रेणी है जिससे उच्च श्रेणी की हम कल्पना नहीं कर सकते। इस श्रेणी की धार्मिकता का अर्थ यह होता है कि मनुष्य की धार्मिकता मात्र बुद्धि और चिन्तन ही पर निर्भर नहीं करती बल्कि व्यक्ति और सत्य के मध्य अब कोई परदा बाक़ी नहीं रहता, और अगर रहता भी है तो वह अत्यन्त बारीक होता है। अब उसके और

सत्य के बीच किसी प्रकार की अपरिचितता और परायापन बाक़ी नहीं रहता। वह एक प्रकार के अलौकिक प्रकाश (Vision) में होता है। सत्य और उसकी अपेक्षाएँ हृदय में अवतरित भाव बन जाते हैं। सत्य की किरणें उसके जीवन में उतरती रहती हैं, जिसके कारण उसका जीवन ज्योतिर्मय बन जाता है। धार्मिकता उसके हृदय की धड़कन और उसके मन का कम्पन सिद्ध होती है। धर्म उसके निज का परिचय बन जाता है। धार्मिक धारणाएँ उसके लिए तर्क पर निर्भर नहीं करतीं बल्कि वे उसके लिए अनावृत तथ्य बन जाती हैं। अब वह धार्मिकता का केवल वाहक नहीं होता बल्कि धार्मिकता उसके लिए एक प्रकार का आनन्द (Enjoyment) सिद्ध होती है।

❖❖❖

3

जीवन के तीन मौलिक तत्व

मानव-जीवन वास्तव में तीन मौलिक तत्वों से निर्मित होता है। वह तीनों तत्व ये हैं :

(1) प्रेम (Something to love)
(2) कर्म (Something to do)
(3) आशा (Something to hope)

(1) प्रेम (Something to Love)

जीवन में यदि कोई ऐसी चीज़ न पाई जाए जो मानव-प्रेम का विषय बन सके, जो उसके लिए मानसिक सहारे का काम देती हो, जिससे उसे जीने का हौसला मिलता हो, जिसके कारण उसके होंटों पर मुस्कान खेलती हो, जिससे उसके दिल की दुनिया आबाद हो, जिसके कारण वह अपने आपको भाग्यवान समझता हो, जिसके लिए तक़लीफ़ें झेल सकता हो और जिसके लिए वह बड़ी से बड़ी क़ुरबानी दे सकता हो, तो ऐसी स्थिति में मनुष्य जी नहीं सकता। वह आत्महत्या कर लेगा। यही कारण है कि मनुष्य किसी न किसी चीज़ से प्रेम अवश्य करता है।

(2) कर्म (Something to Do)

जीवन का दूसरा मौलिक तत्व यह है कि मनुष्य के लिए कोई महान कार्य सम्पन्न करने का अवसर मिलना चाहिए। वह दौड़-धूप, प्रयास और संघर्ष के बिना नहीं रह सकता। वास्तव में कर्म और जीवन दोनों समानार्थक शब्द हैं। कर्म के बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। ऐसे जीवन को जीवन नहीं कह सकते जिसमें कुछ करना न हो। जिसमें मनुष्य को अपनी ऊर्जा के व्यय करने का अवसर प्राप्त न हो। प्रयास और संघर्ष के

बिना चारित्रिक गुणों के प्रदर्शन और उसके विकसित होने की सम्भावना समाप्त हो जाती है। सारांश यह कि जीवन के लिए कर्म अनिवार्य है। निष्क्रियता तो मृत्यु है। जीवन को मरुस्थल नहीं होना चाहिए। मरुस्थल में हरियाली नहीं होती, वृक्ष नहीं होते जिन पर पक्षी बसेरा कर सकें। चमन नहीं होते जिनमें बुलबुलें चहक सकें, फूल खिल सकें और ख़ुशबू बिखर सके।

(3) आशा (Something to Hope)

जीवन का तीसरा मौलिक तत्व है आशा। जीवन वही है जिसमें कुछ आशाएँ हों, उम्मीदें और कामनाएँ हों। आशाओं की कल्पना की उष्मा से जीवन उर्जा प्राप्त करता है। क्या आप सोच सकते हैं कि इस धरती पर कोई ऐसा व्यक्ति भी पाया जा सकता है जिसके जीवन में न कोई आशा पाई जाती हो और न कामना। आशाओं के सहारे आदमी अपने सपने बुनता है और शायद जीवन की यह सबसे प्रिय व्यस्तता भी है :

इक नई शै वुजूद में आई
ख़ाक और ख़ाब को मिलाने से

सपनों ने ख़ाक को कुछ से कुछ बना दिया। इक नई शै, एक नवीन वस्तु अर्थात मनुष्य के अस्तित्व में आने का कारण—भौतिक तत्व से अधिक सपना अथवा चेतना, विचार, आशा और कामनाएँ। आशाएँ और कामनाएँ न हों तो मनुष्य मात्र मिट्टी का एक ढेर बनकर रह जाएगा।

ऊपर जो कुछ कहा गया उससे जीवन के तीनों मौलिक तत्वों के महत्व का भली-भाँति अन्दाज़ा किया जा सकता है। वही विचार वास्तव में विचार (Thought) है और वही धर्म वास्तव में धर्म हो सकता है जो जीवन के इन तीनों पहलुओं की दृष्टि से मानव का मार्गदर्शन करता है।

वह बताता है कि मनुष्य प्रेमभाव के मूल्य को समझे और इसका वास्तविक लक्ष्य (Objective) ईश्वर को जाने और वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति और सम्पूर्ण आत्मा से उससे प्रेम करे। वही वास्तव में मनुष्य को शान्ति और आनन्द प्रदान कर सकता है। उसी के स्मरण से दिलों को सुकून मिलता है। यदि मनुष्य प्रेमभाव से रिक्त हो तो उसका जीवन नितान्त शुष्क होकर रह

जाएगा। उदासी के सिवा उसके हिस्से में कोई चीज़ न आ सकेगी। इस्लाम ने जीवन के इस तथ्य का पूर्णतः आदर किया है। अतएव क़ुरआन में है :

"जो ईमानवाले हैं वे ईश्वर से हद दर्जा मुहब्बत करते हैं" और क़ुरआन में यह भी कहा गया कि "सुन लो, ईश्वर के स्मरण से ही दिलों को चैन और शान्ति प्राप्त होती है।"

क़ुरआन ने सत्कर्म को ईमान का तक़ाज़ा बताया है। क़ुरआन में बार-बार ईमान के साथ अच्छे कर्म का उल्लेख किया गया है जिससे ज्ञात होता है कि ईमान के लिए सत्कर्म आवश्यक है। कर्म के बिना ईमान निर्जीव और निरर्थक होकर रह जाता है। इस्लाम ने जीवन के इस दूसरे महत्वपूर्ण पहलू 'कर्म' पर जितना ज़ोर दिया है शायद ही किसी चिन्तन और दर्शन में उतना ज़ोर दिया गया हो।

आशा और कामना का सम्बन्ध जीवन के तीसरे महत्वपूर्ण मौलिक तत्व से है। यही वह तत्व है जो वर्तमान को भविष्य से जोड़ता है। यह जीवन का वह तत्व है जिसके कारण मनुष्य अमरता का स्वप्न देखता है। क़ुरआन बताता है कि अमर जीवन ही के लिए मनुष्य को पैदा किया गया है। अमरत्व ही मनुष्य की नियति है। जन्नत उसी के लिए है, ईश्वर का सामीप्य और प्रसन्नता उसी के लिए है। सांसारिक जीवन में भी जीवन की ख़ुशी और ख़ूबसूरती उसी के लिए है। दुनिया में यदि मृत्यु का विधान रखा गया है तो केवल इसलिए कि मनुष्य इसके द्वारा एक-दूसरे लोक में प्रवेश कर सके, जो वर्तमान से उत्तम और विस्तृत है।

❖❖❖

4

हिकमत

(1) दैवयोग (Divine Guidance)

(2) बुद्धिमत्ता (Wisdom)

(3) नैतिकता (Morality)

इस्लाम में हिकमत या प्रज्ञा को विशेष महत्व प्राप्त है। मानव-जीवन में व्यक्तित्व के बाद प्रज्ञा को स्थान दिया जा सकता है। क़ुरआन में है, "अल्लाह जिसे चाहता है हिकमत (तत्वदर्शिता) प्रदान करता है और जिसको हिकमत मिली उसे अपार धन मिला" (2:269)। क़ुरआन में एक दूसरी जगह कहा गया है, "निश्चय ही हमने लुक़मान को हिकमत प्रदान की थी कि अल्लाह के आभारी रहो" (31:12)। कुरआन के अध्ययन से यह भी मालूम होता है कि हिकमत या प्रज्ञा के बिना आत्म-विकास सम्भव नहीं। यदि व्यक्ति प्रज्ञावान नहीं है तो उसके व्यक्तित्व में अवश्य ही दोष रह जाएगा। व्यक्तित्व के निर्माण और आत्म-विकास के सम्बन्ध में क़ुरआन में बताया गया है कि पैग़म्बर की ज़िम्मेदारी यह होती है कि वह अपने अनुयायियों के चरित्र और व्यक्तित्व का निर्माण करे। इस कार्य के लिए वह उनके समक्ष ईशवाणी का उच्चारण करता है, उन्हें विधि-विधान और नियमों की शिक्षा देता है और उन्हें हिकमत से अवगत कराता है और इन सारे उपकरणों के द्वारा वह उनके व्यक्तित्व को विकसित करता है। यही विकसित व्यक्तित्व धर्म का वास्तविक लक्ष्य और मानव जीवन की वास्तविक निधि है।

हिकमत को क़ुरआन ने यदि मौलिक महत्व दिया है और हिकमत शब्द क़ुरआन के Key Words में से एक महत्वपूर्ण पारिभाषिक शब्द है तो फिर हमारे लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि हम हिकमत या प्रज्ञा के विषय में यह जानें कि हिकमत वास्तव में क्या है, जीवन में उसे क्या स्थान प्राप्त है और उसका प्रदर्शन जीवन में किन रूपों में होता है? हिकमत वास्तव में ईशप्रदत्त होती है, इसलिए उसमें जो ताज़गी पाई जाएगी वह किसी और

वस्तु में नहीं पाई जा सकती। हिकमत के लक्षणों में से है कि वह शुभ और सुन्दर होती है। वह सन्देहों से मुक्त और सुदृढ़ होती है। उसमें किसी प्रकार की कमज़ोरी नहीं पाई जाती। उसकी हैसियत उस चिराग़ की सी है जो अँधेरे घर को रौशन करता है और अन्धकार को क्षण भर के लिए भी स्वीकार नहीं करता। हिकमत वह चीज़ होती है जो सीधे दिल में उतरती है और सोई हुई आत्मा को जागृत कर देती है, जिसमें यह विशेषता होती है कि उसे पाकर धन के बिना भी एक निर्धन व्यक्ति धनवान हो सकता है और जिसे प्राप्त किए बिना एक धनवान व्यक्ति भी निर्धन ही रह जाता है।

हिकमत वास्तव में एक प्रकार का दिग्दर्शन (Vision) और 'क़श्फ़' है। इसमें सत्य सहसा अनावृत होकर प्रकट होता है, और ऐसा बिना किसी प्रयास के होता है। इसी लिए इसे 'इलहामी' या 'इल-क़ाई' (अर्थात दिव्य) ज्ञान कहते हैं। अलबत्ता इसके लिए पवित्रता, संयम, ईश-भय और ईश्वरीय आदेशों का पालन आवश्यक है। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि आदमी व्यर्थ बातों और व्यर्थ कार्यों से दूर रहे। हदीस में है— हज़रत अबू-हुरैरा *(रज़ि.)* कहते हैं कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने कहा कि जब तुम किसी ऐसे बन्दे को देखो जिसे संसार के प्रति अनासक्ति और अल्पभाषिता प्रदान की गई है तो उसका सामीप्य ग्रहण करो क्योंकि उसके दिल में हिकमत डाली जाती है। (हदीस : बैहक़ी फ़ी शोबिल-ईमान)

हिकमत यद्यपि इलहामी ज्ञान को कहते हैं किन्तु व्यक्ति के जीवन में इसका प्रदर्शन तीन पहलुओं से होता है—

(1) दैवयोग (Divine Guidance)

जब हिकमत का प्रदर्शन हृदय और अंतःकरण के माध्यम से होता है तो उसे आन्तरिक प्रेरणा, दैवयोग (Divine Guidance), कृतज्ञताभाव, अन्तर्दृष्टि आदि नामों से अभिव्यंजित करते हैं। इसी लिए क़ुरआन में शुक्र (कृतज्ञता) को हिकमत कहा गया है। (क़ुरआन, 31:12)

(2) बुद्धिमत्ता (Wisdom)

जब हिकमत का प्रदर्शन मानव-मस्तिष्क के माध्यम से होता है तो उसे

बुद्धिमत्ता, दानाई, समझ, विवेक आदि नामों से पुकारा जाता है। ऐसा व्यक्ति जो मूर्खतापूर्ण बातें करता हो, जिसकी सोच और विचारों में गहराई न पाई जाती हो और जो छिछलेपन और सतहियत पर राज़ी हो उसका हिकमत और प्रज्ञा से कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

(3) नैतिकता (Morality)

जब हिकमत का प्रदर्शन मानव के व्यावहारिक जीवन के माध्यम से होता है तो फिर उसे नैतिकता, सज्जनता और शराफ़त जैसे नामों से विभूषित किया जाता है। इससे पता चलता है कि हिकमत का मानव-जीवन से कितना गहरा सम्बन्ध है। हिकमत प्राप्त व्यक्ति के जीवन और उस व्यक्ति के जीवन में बड़ा अन्तर पाया जाएगा जो हिकमत की दौलत से वंचित रहा। जिसे हिकमत की दौलत मिल गई है उसके चरित्र में दृढ़ता पाई जाएगी। उसपर आप पूरा भरोसा कर सकते हैं। उससे किसी प्रकार के विश्वासघात की आशंका नहीं हो सकती। वह ऐसा व्यक्ति होता है जो बुराई को भली प्रकार जानता है। अतः भूल कर भी वह बुराई में लिप्त नहीं हो सकता। उसे इसका पूर्णरूपेण अनुभव होता है कि जीवन में शुभ और सुन्दर क्या है। अतः जीवन में उसका प्रयास यह होता है कि जीवन में जो शुभ व सुन्दर है वह नष्ट न हो जाए।

ऊपर संकेत किया गया है कि हिकमत किन लोगों को मिलती है। हिकमत वास्तव में उन व्यक्तियों को ही मिलती है जिनका हृदय-दर्पण स्वच्छ और साफ़ होता है। यही वह आईना है जिसमें सत्य प्रतिबिंबित हो सकता है। जो लोग लोभ, अहंकार, ईर्ष्या, क्रोध आदि बुराइयों में ग्रस्त होते हैं और जिनका सारा प्रयास इसके लिए होता है कि वे वैध अथवा अवैध, जिस रूप में भी हो सके धन और प्रसिद्धि प्राप्त करें– उन्हें यह परम धन जिसे तत्त्वदर्शिता (Wisdom) कहा जाता है कदापि प्राप्त नहीं हो सकता। वे ईश्वर को इसका अवसर ही नहीं देते कि वह उनके अन्तर्मन के माध्यम से उनसे वार्तालाप करे और अपने सूक्ष्म संकेतों से उनका मार्गदर्शन करे।

❖❖❖

5

वाणी

(1) सच्ची वाणी

(2) अच्छी वाणी

(3) प्रासांगिक वाणी

आदमी की वाणी को जीवन में मौलिक महत्व प्राप्त है। सच्ची बात तो यह है कि कोई व्यक्ति क्या है यह उसकी बातचीत से ज़ाहिर हो जाता है। पवित्र प्रवृत्ति के लोगों की बातचीत में पवित्रता पाई जाएगी। भटके हुए और गुमराह लोगों की गुमराही उनकी बातों से स्पष्टतः झलकती रहती है। आदमी जो कुछ कहता है केवल उससे ही नहीं, बल्कि बातचीत का लहजा और अन्दाज़ भी बताता है कि वह क्या और कैसा है। यदि आदमी को शान्ति और सुकून प्राप्त नहीं है तो उसकी बातचीत से ज़ाहिर होगा कि वह अशान्त है। शान्त व्यक्ति की बातों में किसी प्रकार का तनाव नहीं पाया जाएगा। अशान्त व्यक्ति अपनी बातों से दूसरों को भी तनावग्रस्त कर देगा। इसके विपरीत ऐसा व्यक्ति जिसका हृदय शान्त होगा, उसकी बातों में यह शक्ति हो सकती है कि वह तनावग्रस्त व्यक्ति के मानसिक तनाव (Tension) को दूर कर सके।

फिर आदमी की इच्छाओं और कामनाओं का प्रदर्शन भी उसकी वाणी से होता है। आदमी कामनाओं के सहारे ही ज़िन्दा रहता है। आदमी की वास्तविक पहचान उसकी कामनाओं से ही होती है। उसकी कामनाओं की रौशनी में हम जान सकते हैं कि वह कोई बड़ा या महान इनसान है या कोई छोटा या गिरा हुआ व्यक्ति।

विचार और चिन्तन में यदि व्यापकता पाई जाती है और उसमें किसी प्रकार की तंगनज़री नहीं है तो फिर उसकी बातें व्यापकता के गुण से सुशोभित होंगी। जिसकी वाणी में प्रशंसनीय गुण पाए जाते हों और जो

विचारदोष और भावदोष से मुक्त हो तो फिर सरलतापूर्वक आप किसी एक वाक्य में उस व्यक्ति के व्यक्तित्व को चित्रित कर सकते हैं।

व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन से जिस वाक्य या क़ौल की पुष्टि हो रही होगी वह वाक्य पवित्र या महावाक्य भी हो सकता है और हीन एवं अपवित्र भी। यह उस व्यक्ति के चरित्र पर निर्भर करता है। क़ुरआन में इन दोनों प्रकार के वाक्यों का उल्लेख हुआ है। पवित्र और महावाक्य तो वह है जो शुभ एवं शिव हो। वह भलाइयों का स्रोत सिद्ध होता है। उसका सम्बन्ध किसी विशेष देश और कालखण्ड से नहीं होता, वह तो सदाबहार वृक्ष के समान होता है। उसके फल मींठे और स्वास्थ्यवर्धक होते हैं। ऐसा वाक्य सदैव जीवंत रहता है। उसमें ताज़गी ही नहीं आकर्षण शक्ति भी होती है। मस्तिष्क ही नहीं बल्कि आत्मा तक इससे जागृत हो सकती है। वह जीवन के मर्म को स्पर्श करता है और व्यावहारिक जीवन से भी उसका गहरा नाता होता है।

वाणी के सम्बन्ध में ये तीन बातें सदैव सामने रहनी चाहिएँ—

1. सच्चाई 2. अच्छाई 3. प्रसंगानुकूलता

आप जो कुछ कहें वह सत्य हो। कोई ऐसी बात कभी भी आपकी ज़बान पर न आने पाए जो सच न हो, बल्कि झूठ हो। क्योंकि झूठी बातें गुमराही का कारण बनती हैं। कुछ पुराने रचनाकारों ने इस बात का ध्यान नहीं रखा। वे काल्पनिक कथाओं की रचना करते चले गए और उन कथाओं को उन्होंने सच और सच्ची घटनाओं के रूप में जनसामान्य के सामने प्रस्तुत किया। उनको सुनने और पढ़नेवाले श्रद्धालु उनको वास्तविक वृत्तांत समझकर पढ़ते-पढ़ाते रहे और जो बातें उनकी समझ में नहीं आईं तो उन्होंने कहा कि यह हमारी समझ का दोष है, धर्मग्रन्थों में जो कुछ भी है वह सर्वथा सत्य ही है। काश! सच्चाई का मूल और माहात्म्य उनके समक्ष होता और वे बुद्धि और समझ से काम लेते तो सत्य और असत्य में वे सरलतापूर्वक अन्तर कर सकते थे। किन्तु सच्चाई से बढ़कर उन्हें रसमय एवं विचित्र आख्याएँ ही प्रिय रहीं। वे सत्य से दूर होते गए और वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Scientific attitude) से अनभिज्ञ होकर रह गए।

बात में सच्चाई होनी चाहिए, अगर बात में सच्चाई नहीं है तो उसे ज़बान पर कभी न लाएँ। यही वाणी के सम्बन्ध में पहला सूत्र है। वाणी के सम्बन्ध में देखने की दूसरी बात यह है कि वह सच्ची ही न हो, बल्कि अच्छी भी हो अर्थात् सच्चाई के साथ उसमें अच्छाई भी पाई जाती हो। अगर वह कोई लाभदायक बात नहीं है तो फिर किसी को उसे बताने की ज़रूरत नहीं रहती। इस दूसरे सूत्र पर अगर ध्यान दिया जाए तो फिर कितनी ही निरर्थक बातें करने से हम बच जाएँगे और अच्छी तथा लाभदायक बातों के जानने और लोगों को उनसे अवगत कराने के लिए हमारे पास अधिक-से-अधिक समय होगा।

तीसरी ज़रूरी चीज़ जो ध्यान देने की है वह यह है कि बात चाहे कितनी ही सच्ची क्यों न हो उसके बयान के लिए उचित अवसर का ध्यान रखना भी बहुत ज़रूरी है। अगर आप एक अच्छी बात भी कहने चले हैं किन्तु वह बेमौक़ा है तो वह अच्छी बात भी बुरी हो जाएगी और विवेकशील व्यक्ति की निगाह में आप बेसमझ ठहरेंगे। मिसाल के तौर पर खुशी और शादी की कोई महफ़िल हो, वहाँ आप ऐसी ख़बर सुनाने की जल्दी न करें जो ग़म और दुख से भरी हुई हो। इसे आप किसी दूसरे अवसर के लिए स्थगित कर दें। इसी तरह महफ़िल अगर ग़म की है या आप किसी शोक-सभा में सम्मिलित हैं तो फिर हँसने-हँसाने से परहेज़ करें।

❖❖❖

6

व्यक्तित्व का निर्माण

(1) विचार (Thought)
(2) भाव (Feeling)
(3) कर्म (Action)

व्यक्तित्व (Personality) ही आदमी की पहचान है। जो लोग अपने व्यक्तित्व की ओर ध्यान नहीं देते और जो यह नहीं जानते कि व्यक्तित्व को आघात अगर पहुँचता है तो यह वह हानि होगी जिससे बड़ी किसी हानि की कल्पना नहीं की जा सकती। मनुष्य का महत्व और उसका मूल्य उसके व्यक्तित्व पर ही आधारित होता है। मनुष्य के सारे कर्मों, गतिविधियों और जीवन-चरित्र को उसके व्यक्तित्व में आँका जा सकता है। साधारणतया लोग कहा करते हैं कि मरने के पश्चात् आदमी के साथ न उसका धन जाता है, न सम्पत्ति और न उसके साथ उसके परिवार के लोग होते हैं। उसके साथ अगर जाते हैं तो उसके कर्म ही, चाहे वे जैसे भी हों– अच्छे या बुरे। इस बात को दूसरे शब्दों में यूँ कहा जा सकता है कि मरने के पश्चात मनुष्य के साथ उसका शील-स्वभाव और चरित्र ही जाता है। इसको यदि और संक्षेप में कहना चाहें तो हम कह सकते हैं कि मरने के पश्चात आदमी के साथ उसका व्यक्तित्त्व ही जाता है। व्यक्तित्व का नाता मनुष्य के साथ हमेशा के लिए अटूट होता है।

ऊपर जो कुछ कहा गया उससे यह बात भली-भाँति स्पष्ट होती है कि मनुष्य के पास सबसे बड़ी पूँजी उसका अपना व्यक्तित्व ही है। किन्तु यह देखकर बड़ा ही दुख होता है कि साधारणतया लोग इस तथ्य से अनभिज्ञ होकर जीवन व्यतीत करते हुए दिखाई देते हैं। व्यक्तित्व का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि व्यक्तित्त्व के निर्माण में तीन चीज़ों की मुख्य भूमिका होती है।

(1) विचार (Thought)

(2) भाव (Feeling)

(3) कर्म (Action)

प्रत्येक व्यक्ति के कुछ न कुछ विचार होते हैं। उसके विचार सत्य भी हो सकते हैं और असत्य भी। यह भी सम्भव है कि उसका पूरा जीवन अज्ञानपूर्ण विचारों के साथ समाप्त हो जाए और उसे यह ख़बर न हो सके कि वह दुनिया में क्यों आया था और मरने के बाद उसे किस लोक में जाना है? जगत् का स्रष्टा, नियन्ता और उसका चलानेवाला कौन है और किस योजना के अन्तर्गत वह जगत के कार्यकलाप को चला रहा है? उस योजना में मनुष्य की क्या भूमिका होनी चाहिए और इसमें उसकी क्या भागीदारी हो सकती है? विचार उच्च और गहरे भी हो सकते हैं और तुच्छ और घिनावने भी। कुछ विचार ऐसे होते हैं जो विष की भाँति पूरे जीवन को विषाक्त कर देते हैं। बुरे विचार ऐसे प्रदूषक (Pollutants) हैं जो समाज के वातावरण को प्रदूषित करके रख देते हैं। किसी के विचार यदि सत्य और सुन्दर नहीं हैं तो फिर हम उसके लिए किसी महान और आकर्षक व्यक्तित्व की कल्पना भी नहीं कर सकते।

व्यक्तित्व के निर्माण में दूसरी चीज़ जिसका मौलिक योगदान होता है वह है भाव (Feeling)। मनुष्य विचारों के साथ जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। उसकी कुछ भावनाएँ और कामनाएँ भी होती हैं। वह केवल यही नहीं चाहता कि उसकी भूख मिटे बल्कि उसे आनन्द की भी तलाश होती है। भावनाओं में भी अन्तर पाया जाता है। कुछ भावनाएँ पवित्र और निर्मल होती हैं कुछ अपवित्र और घृणित। जब तक मनुष्य की भावनाएँ, उसकी आसक्ति और अभिरुचियाँ पवित्र और गहरी नहीं होतीं, तब तक उसके लिए किसी आकर्षक और महान व्यक्तित्व का हम स्वप्न नहीं देख सकते।

व्यक्तित्व के निर्माण में तीसरी चीज़ है जिसे कर्म (Action) कहा जाता है। विचार और भावनाओं की तरह कर्म भी अच्छे-बुरे होते हैं। कुछ कर्मों का मानव-इतिहास में इतना बड़ा योगदान रहा है कि व्यक्ति को उन्होंने अमर बना दिया। कुछ कर्मों के अच्छे फलों से मनुष्य की पीढ़ियाँ-दर-पीढ़ियाँ

लाभांवित होती रहती हैं और कुछ व्यक्तियों के कर्म ऐसे विनाशकारी और निकृष्ट होते हैं कि शताब्दियों तक जनता त्राहि-त्राहि करती रहती है। इसकी मिसालों से इतिहास के पृष्ठ भरे पड़े हैं। अच्छे व्यक्तित्व के निर्माण में तो वही कर्म सहायक हो सकते हैं जिन्हें हम सुकर्म या कल्याणकारी कर्म के नाम से जानते हैं।

विचार, भाव और कर्म—ये तीन चीज़ें व्यक्तित्व के मूल निर्माणकारी तत्व हैं। इन तत्वों से मिलकर ही किसी व्यक्तित्व का निर्माण होता है। किन्तु यह बात ध्यान में रहे कि व्यक्तित्व के निर्माण के लिए केवल इन तत्वों का पाया जाना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि यह भी आवश्यक है कि इन तीनों तत्वों की मात्रा या स्तर में समानता, एकात्मता और समरसता पाई जाए। इसके बाद ही हम एक महान और सन्तुलित व्यक्तित्व की आशा कर सकते हैं।

❖❖❖

7

पुरुषार्थ

(1) संकल्प

(2) कर्मठता एवं सक्रियता

(3) आशावादिता

जीवन में मानव की सफलता के लिए अनिवार्य है कि वह केवल जीवन के वास्तविक लक्ष्य से ही परिचित न हो बल्कि इसी के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि उसमें मनुष्योचित वे गुण भी हों जो सफलता के मार्ग में अग्रसर रख सकें। ऐसे गुणों को पुरुषार्थ कहा जा सकता है। मौलिक रूप से तीन गुण ऐसे हैं जिन्हें पुरुषार्थ के अन्तर्गत रखा जा सकता है—

(1) संकल्प (2) कर्मठता एवं सक्रियता (3) आशावादिता।

1. संकल्प

यदि किसी व्यक्ति में संकल्प—शक्ति नहीं पाई जाती तो वह जीवन में करने जैसा कुछ भी नहीं कर सकता। संसार में जिस किसी व्यक्ति या क़ौम ने कोई महान कार्य किया है, उसके पीछे उसकी संकल्प—शक्ति अवश्य रही है। इरादे की मज़बूती और संकल्प के बिना न कोई व्यक्ति एवरेस्ट की चोटी पर अपना झण्डा फहरा सका है और न कोई कोलम्बस किसी नई दुनिया की खोज कर सका है। यही शक्ति है जिसके बल पर मनुष्य चन्द्रमा पर अपने क़दम रखने में सफल हो सका है। विज्ञान लोक में जितने भी आविष्कार हुए हैं वे सब इसी संकल्प-शक्ति के चमत्कार हैं। अगर यह संकल्प-शक्ति न होती तो कभी भी कोई आविष्कार न कर सकता। कोई नई चीज़ दुनिया को देने के लिए शारीरिक और मानसिक परिश्रमों से गुज़रना पड़ता है। एक लगन और धुन होती है कि वैज्ञानिक खाने-पीने और आराम करने को भी भूल जाता है तब कहीं वह आपने ध्येय में सफल होता है।

दुनिया में जितने भी महान विजेता हुए हैं, जिन्होंने अपने दुश्मनों को परास्त करके अपनी विजय की घोषणा की है, उनके पास केवल सैन्यबल ही न था बल्कि सैन्यबल से अधिक संकल्प की शक्ति थी। वे अपने इरादे के ऐसे मज़बूत थे कि अपने उद्देश्य की प्रप्ति के मार्ग में उन्हें मृत्यु की भी कोई चिन्ता न थी। उन्हें एक ही धुन लगी रहती थी कि वे अपने लक्ष्य को किसी तरह भी प्राप्त कर लें।

यदि कोई नेता या धर्म उपदेशक चाहता है कि लोग उसकी रहनुमाई से फ़ायदा उठाएँ, क़ौम आगे बढ़े, अँधेरा दूर हो, उजाला फैले, समाज में खुशियों का बसंत आए, कोई दुखी न हो, आँसू न छलकें और यदि कहीं आँसू छलकें भी तो वे प्रेम के आँसू हों, निराशा किसी को न डसे, कोई असहाय न रह जाए और मौलिक आवश्यकताएँ सबकी पूरी हों, चाहे वह किसी भी विचारधारा का माननेवाला हो तो मानवता के नाते उसकी सहायता करनी अनिवार्य है। और यदि कोई चाहता है कि संसार में सत्य विजयी हो, लोगों का अज्ञान समाप्त हो, वे चरित्रवान हों, संसार में धर्म की स्थापना हो और सामाजिक न्याय की अपेक्षाएँ पूरी हों, तो उसकी ये इच्छाएँ कभी भी पूरी नहीं हो सकतीं यदि ये मात्र इच्छाएँ ही हैं। दुनिया में केवल इच्छाओं और कामनाओं ही से कोई काम पूरा नहीं हो सका है। इसके लिए संकल्प और इरादे की मज़बूती चाहिए।

इस्लाम को अपने आरम्भ में जो आश्चर्यजनक सफलता मिली है, कि वह देखते-देखते दुनिया के बड़े हिस्से में छा गया, तो यह वास्तव में उसके अनुयायियों की निष्ठा और इस्लाम के प्रति उनके विश्वास ही का चमत्कार न था, बल्कि उनके मन की लगन, उनका साहस और उनका निश्चय था जो उन्होंने अपने जीवन के प्रति कर रखा था। उन्होंने जीवन के लिए जो फ़ैसला किया था उसमें किसी प्रकार का संशय उनके मन में नहीं पाया जाता था, इसलिए कोई भी चीज़ उन्हें उनके इरादे से रोक न सकी।

2. कर्मठता एवं सक्रियता

पुरुषार्थ से सम्बन्धित दूसरी चीज़ जिसे महत्व प्राप्त है वह है कर्मठता और सक्रियता। कामयाबी के लिए केवल इरादा और संकल्प ही काफ़ी नहीं

है। कोई भी व्यक्ति अपने इरादे में सफल नहीं हो सकता जब तक कर्मठता का गुण उसमें न पाया जाता हो। इसी लिए ज्ञान के बाद कर्म पर बल दिया जाता है। जो ज्ञान हमें कर्म के क्षेत्र में न ले जा सके वह ज्ञान किस काम का। वह ज्ञान अपूर्ण है। ज्ञान को अपेक्षित है इश्क़ और लगन। इश्क़ आदमी को कभी चैन से बैठने नहीं दे सकता। इश्क़ और लगन है तो आदमी कर्म के क्षेत्र में आगे ही बढ़ता जाएगा, भले ही उसे इसके लिए कितनी ही क़ुरबानियाँ क्यों न देनी पड़ें दुनिया का कोई लोभ और आकर्षण उसे इस मार्ग से विचलित नहीं कर सकता। यदि कोई कर्मवीर नहीं और कर्मठता की विशेषता उसमें नहीं पाई जाती तो मात्र संकल्प और उसकी कामनाएँ निष्प्राण और व्यर्थ हैं, ऐसा व्यक्ति केवल सोचेगा और दूर तक सोचेगा, उसकी अपनी योजनाएँ भी होंगी, किन्तु वह अपनी जगह से खिसकने को राज़ी न होगा, ऐसी हालत में उससे कोई बड़ी आशा नहीं की जा सकती। ऐसा व्यक्ति किसी क्रान्तिकारी आन्दोलन में सहायक नहीं हो सकता।

3. आशावादिता

पुरुषार्थ से सम्बन्धित तीसरी चीज़ जिसको सभी ज्ञानियों ने महत्व दिया है, वह है आशावादिता। किसी भी कार्य की सफलता बड़ी हद तक इसी पर निर्भर करती है। निराशावादी व्यक्ति किसी उच्च लक्ष्य के मार्ग में हमारा सहचर नहीं बन सकता। हर क़दम पर उसकी निराशावादी मानसिकता उसके पाँव पकड़ेगी। उसे दूर तक कोई रौशनी दिखाई नहीं दे सकती। उसे हर तरफ़ अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देगा। अन्धकार से उसका कुछ ऐसा समझौता हो चुका होता है कि वह उसी के साथ रहने को राज़ी हो गया होता है। किसी रौशनी की बात उसके लिए स्वप्न के सदृश होती है। निराशा ही उसकी मनोवृत्ति बन चुकी होती है और असफलता ही को वह अपना भाग्य समझता है। ऐसी दशा में वह दूसरों के भाग्य को क्या बदलेगा जबकि वह स्वयं अपने भाग्य के प्रति निराशाग्रस्त हो चुका होता है। जिन लोगों ने दुनिया में महान कार्य किए हैं, वे कार्य चाहे जीवन के किसी क्षेत्र के रहे हों, ये वही लोग थे जो आशावादी थे। निराश होना वे जानते ही न थे। और वही हैं जो अन्ततः सफल होकर रहे। वे समझते थे कि जिस मार्ग को उन्होंने

अपने लिए चुना है, उस मार्ग पर चल पड़ना ही वास्तविक सफलता है। और यदि उनका प्रयास और संघर्ष किसी महान विश्वव्यापी लक्ष्य के लिए है, तो फिर तो इसका कोई विकल्प नहीं कि आदमी अपनी पूर्ण शक्ति और कर्म-कुशलता को इसी में लगा दे। यह इस बात का प्रमाण होगा कि वह जीवन के सुन्दरतम अभिप्राय को जान गया है। उसके लिए जीवन-अभिप्राय का ज्ञान उसकी पहली सफलता है। लोगों को इस अभिप्राय से परिचित कराने का प्रयास और इससे उसकी तीव्रता और उद्देश्य प्राप्ति के लिए अपने आप को दाँव पर लगा देना उसकी दूसरी सफलता है और उसके प्रयासों से इश्क़ की वह आग जो उसके सीने में लगी हुई है बहुसंख्या में लोगों के दिलों में वही आग लगा सके तो यह उसकी तीसरी सफलता है।

यदि उसकी क़ुरबानियों और प्रयासों से कुछ का कुछ हो गया, आक़ा और ग़ुलाम का अन्तर मिट गया, लोगों को समस्त मानव एक दिखाई देने लगे और धरती के मनुष्य परस्पर एक-दूसरे के भाई बन गए और 'वसुधेव कुटुम्बकम' का स्वप्न साकार हो गया और ईश्वर की इच्छा सबकी इच्छा बन गई और लोगों को वह दृष्टि मिल गई कि नश्वर जीवन में अमर जीवन के अभिलाषी बन गए, उनकी आँखें खुल गईं और अहंकार एवं अन्धता समाप्त हो गई और स्वार्थपरता पर निःस्वार्थता को और वैर-भाव पर प्रेम को विजय प्राप्त हो गई तो यह उसकी चौथी ही नहीं, वरन् पूर्ण सफलता है। इस तरह इस राह में सफलता ही सफलता पाई जाती है। असफलता का यहाँ निवास नहीं। लेकिन निराशावादी मनोवृत्ति के व्यक्ति को तो सफलता में भी असफलता दिखाई देगी। वह विभिन्न आशंकाएँ और जान और माल के नुक़सान के ख़याल से इतना भयभीत होगा कि किसी उच्च और विश्वव्यापी लक्ष्य के विषय में कुछ सोचने का उसके पास समय ही न होगा।

❖❖❖

8

महानता

(1) महानता क्या है?
(2) महानता का रहस्य
(3) महानता के लक्षण

ईश्वर ने मानव को प्रधानता प्रदान की है। मानव महानता के साथ पैदा होता है, यद्यपि उसे एहसास नहीं होता। वह ज़िन्दगी के मैदान में क़दम रखता है, किन्तु साधारणतया उसके रहन-सहन और उसके कामों से किसी बड़ाई और महानता की अभिव्यक्ति नहीं होती बल्कि इसके विपरीत वह अपने रंग-ढंग से अपने छोटे होने ही का प्रमाण प्रस्तुत करता रहता है।

मानव की महानता का वास्तविक कारण यह है कि ईश्वर ने जगत् में उसी पर सबसे बढ़कर अपनी प्रतिच्छाया डाली है और सम्पूर्ण जगत को उसके कार्य-सेवा में लगा दिया है। सूर्य हो या चाँद, हवाएँ हों या बादल, पर्वत हों या नदियाँ, धरती से पैदा होनेवाले अनाज हों या विभिन्न प्रकार के मीठे फल, चिड़ियाँ हों या पशु, सभी कुछ उसी के लिए पैदा किए गए हैं। धरती की सभी चीज़ों से जहाँ मनुष्य अपनी ज़रूरतें पूरी करता है, वहीं उन ही चीज़ों के कारण यह धरती अत्यन्त सुन्दर दिखाई देती है। यदि पहाड़ न होते, नदियाँ न होतीं, हरियाली और पेड़-पौधे न होते तो यह धरती उजाड़ और मरुस्थल बनकर रह जाती। मानव को उच्च पद पर अकारण नहीं रखा गया है। इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य ईश्वर नहीं हो सकता किन्तु वह ईश्वर के सौन्दर्य एवं तेज को प्रतिबिम्बित अवश्य कर सकता है। इसी लिए मनुष्य को Image of God कहा जाता है, अर्थात नर नारायण का रूप है।

मनुष्य को यदि ईश्वर की इस विशेष कृपा का ज्ञान न हो, जो ईश्वर ने उस पर की है, तो फिर न तो वह जान सकता है कि उसे कोई बड़ाई मिली है और न वह ईश्वर के इस अनुग्रह का आनन्द ले सकता है। जीवन के

पाश्विक स्तर ही को वह महत्व देता रहेगा और अपनी गतिविधियों से वह स्वयं अपनी बड़ाई का निषेध करता रहेगा। उसकी दशा ठीक उस व्यक्ति जैसी होगी जिसके आँगन में ख़ज़ाना छिपा हुआ हो और उसे उस ख़ज़ाने की ख़बर न हो। ऐसा व्यक्ति ख़ज़ाने का मालिक होते हुए भी दरिद्रता का जीवन व्यतीत कर सकता है। मनुष्य की महानता के कारण स्पष्ट है कि उसके जीवन का लक्ष्य भी महान ही हो सकता है। मनुष्य जब अपने उच्च स्थान को समझ लेता है तो उसकी यह उच्चता स्वयं उसे बताती है कि उसका शील-स्वभाव कैसा होना चाहिए और उसका आचरण कैसा नहीं होना चाहिए। मनुष्य जब उस स्थान के महत्व और उच्चता को महसूस कर लेता है तो वह देखता है कि वह ईश्वरीय अनुग्रह एवं कृपा (Bless of God) से घिरा हुआ है और अलौकिक सौंदर्य की उस पर निरन्तर वर्षा हो रही है जो उसके विचार, भाव और कर्मों को भी सुन्दरता से आभूषित कर रही होती है। ऐसा व्यक्ति यह कभी नहीं चाहेगा कि उसे जो ख़ूबसूरती हासिल हुई है, उसे कोई क्षति पहुँचे।

मनुष्य को इस प्रकार जो महानता प्राप्त होती है, वह कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसे हरेक महसूस कर सके। महान् व्यक्ति भी जनसाधारण व्यक्तियों की तरह खाता-पीता और चलता-फिरता है। जीवन में दुख-सुख से वह भी दोचार होता है। वह बीमार भी होता है और उसे भी मृत्यु आती है। ऐसी हालत में उसकी महानता को साधारणतया लोग नहीं समझ पाते। महानता का आनन्द वास्तव में वही ले सकता है जिसे महानता की दौलत प्राप्त होती है। जीवन के रहस्योद्घाटन के बिना किसी को महानता प्राप्त नहीं होती। रहस्योद्घाटन के पश्चात् मनुष्य यह देखता है कि वह वास्तव में शरीर के अतिरिक्त कुछ और है जिसे आत्मा कहते हैं। शरीर का आकर्षण भी आत्मा पर ही निर्भर करता है। ऐसे व्यक्ति की दृष्टि में आकाश और धरती ही नहीं बल्कि वह कुछ भी होता है जो समय और काल से परे है। वह जानता है कि केवल वर्तमान जीवन ही उसका नहीं है बल्कि भविष्य भी उसकी प्रतीक्षा में है। ऐसे व्यक्ति की विशिष्टता और बड़ाई को कोई छीन नहीं सकता। गरिमा, विशालहृदयता, करुणा और क्षमाशीलता महान व्यक्तियों

के विशेष गुण हैं। हम यहाँ महान् व्यक्तियों की कुछ विशेषताओं का उल्लेख करना चाहेंगे—

बड़ाई का गरिमा से विशेष सम्बन्ध होता है, बल्कि बड़ाई अपने आप में एक गरिमा ही है। महान व्यक्ति कभी भी ओछी हरकतें नहीं कर सकता, उसके विचार कभी छिछले नहीं हो सकते। स्वभावतः वह कोई ऐसी नीति नहीं अपना सकता जिससे उसकी महानता को आघात पहुँचता हो। हम सब जानते हैं कि धोखा-धड़ी का काम वही व्यक्ति करता है जिसे केवल अपने लाभ की चिन्ता होती है। दूसरों को हानि पहुँचाने में ऐसे व्यक्ति को कोई संकोच नहीं होगा। किन्तु एक महान व्यक्ति के बारे में हम सोच भी नहीं सकते कि स्वार्थपरता उसका स्वभाव हो सकता है। यहाँ एक रहस्य को जान लेना ज़रूरी है। आदमी को जो चीज़ छोटा बनाती है वह हेय-इच्छा है जिसका सम्बन्ध मन से होता है। ऐसे मन को विदा किए बिना कोई व्यक्ति महान नहीं हो सकता। यही मन है जो उसे लोभी व कृपण बनाता है। इसी के कारण मनुष्य में अहंकार की वृत्ति भी आ जाती है और वह क्रोध में भी पड़ जाता है। ऐसा व्यक्ति लोगों को धोखा देकर अपना काम निकालने में कुछ भी संकोच नहीं करता। मनुष्य जब ऐसे मन से मुक्त हो जाता है तो फिर उसकी दुनिया विशाल हो जाती है। वह ईश्वर तो नहीं हो सकता किन्तु मन, जिसे अरबी में 'हवा' कहते हैं, उससे छुटकारा पाने के पश्चात् ऐसा दर्पण अवश्य बन जाता है जिसमें ईश्वरीय गुणों की प्रतिच्छाया पड़ने लगती है। यही उसकी महानता का रहस्य है। ऐसा व्यक्ति स्वयं नुक़सान उठा लेगा किन्तु दूसरों को नुक़सान नहीं पहुँचा सकता। उसके यहाँ दुष्टता और निर्दयता जैसी कोई चीज़ नहीं पाई जाएगी। उसके यहाँ पाई जाएगी तो करुणा, जो प्रेम ही का एक रूप है। वह अत्यन्त संवेदनशील होगा। दूसरों की पीड़ा से वह दुखी हो जाएगा। वह किसी को दुख नहीं पहुँचा सकता। किसी को निराश देखना उसको सहन न होगा, किसी का बुरा चाहना उसकी दृष्टि में कुफ़्र से कम न होगा। कुफ़्र का अभिप्राय यही होता है कि आदमी ने अन्याय का मार्ग अपना लिया जबकि जीवन ही नहीं यह सम्पूर्ण जगत् न्याय पर क़ायम है। जहाँ न्याय का क़ानून काम न कर रहा हो वहाँ की

किसी चीज़ पर भी भरोसा आप नहीं कर सकते। मन अर्थात् प्रलोभन एवं हेय इच्छाओं से मुक्त होकर ही कोई व्यक्ति महान बन सकता है, फिर उसकी दुनिया अत्यन्त विस्तृत हो जाती है। पराए अपने बन जाते हैं। वह संसार के समस्त लोगों को अपना समझता है। उसके हृदय में सबके लिए प्रेम होता है। उसकी महानता और बड़ाई को प्रभावित करने के लिए किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती, उसके व्यक्तित्व की गरिमा ही उसकी महानता का सबसे बड़ा प्रमाण होती है।

व्यक्तित्व की महानता का एक विशेष लक्षण हृदय की विशालता भी है। किसी व्यक्ति में महानता के गुण उसी स्थिति में पाए जा सकते हैं, जबकि वह स्वार्थपरता और अहंकार आदि के रोगों से छुटकारा पा गया हो, और एक विशाल संसार उसके समक्ष हो और उसके हृदय में सभी के लिए स्थान हो। इससे पहले वह किसी को अपना और किसी को पराया समझता था। किसी से मित्रता का सम्बन्ध स्थापित करने के लिए यह भी ज़रूरी था कि वह किसी को अपना शत्रु भी समझे। विशालहृदयता के कारण वह स्वयं इतना विस्तुत और असीम हो गया जिसके समक्ष सम्पूर्ण जगत् भी छोटा दिखाई देने लगता है।

संसार में अब उसके लिए कोई ग़ैर नहीं, सभी अपने हैं। जगत् के कण-कण से उसे प्रेम-संगीत की ध्वनि सुनाई देने लगती है। कुछ ऐसे प्रेम-भाव से उसका अस्तित्व परिपूर्ण हो जाता है कि उसे अपने जीवन में किसी रिक्तता का आभास नहीं होता। अब उसकी दरिद्रता समाप्त हो चुकी होती है। जीवन में पहली बार उसे अपने वास्तविक स्वरूप का आभास होता है। अब तक वह विचारों के सहारे जी रहा था। अब विचार नहीं बल्कि जीवन से उसका सीधा सम्पर्क हो गया। एक ऐसी सम्पदा उसके हाथ आ गई जिससे बढ़कर किसी सम्पदा की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

महानता का एक विशेष लक्षण वह है जो आदमी के व्यवहार के माध्यम से प्रकट होता है। महान व्यक्ति के स्वभाव में क्षमाशीलता को प्रधानता प्राप्त होती है। महान व्यक्ति क्रोध से भरा हुआ नहीं हो सकता, वह अपने दुश्मनों तक को क्षमा ही नहीं करता बल्कि वह उनका शुभचिन्तक और हितैषी भी

होता है। जिन लोगों ने उसे हर तरह से तकलीफ़ें पहुँचाई होती हैं और जो उसे घृणा की दृष्टि ही से देखते हों, वह उनकी ख़ताएँ भी माफ़ करता है। उसके हृदय में किसी प्रकार की कटुता, कड़ुवाहट और तनाव नहीं पाया जाता। जब वह दूसरों को क्षमा करता है तो उसे महसूस होता है कि उसने स्वयं को कृतार्थ किया है। वह जानता है कि–

"Forgiveness is an act of self love."

(क्षमा करना स्वयं अपने से प्यार करना है।)

भूखे लोगों को खिलाकर उसे जिस तृप्ति का एहसास होता है, स्वयं भोजन करने से वह तृप्ति उसे नहीं होती। नंगे को वस्त्र पहनाकर उसे जो खुशी होती है, स्वयं वस्त्र धारण करते समय उसे वह खुशी नहीं होती।

❖ ❖ ❖

9

अभीष्ट गुण और क़ुरआन

(1) उत्तमता

(2) स्थायित्त्व

(3) अविलम्ब

हम उसी चीज़ को पसन्द करते हैं जिसमें कोई ऐब और ख़राबी न हो, बल्कि उसमें ख़ूबी और अच्छाई पाई जाती हो, वह गुणयुक्त हो। इस सम्बन्ध में जो गुण अभीष्ट हैं वे मौलिक रूप से तीन हैं–

1. वह उत्तम हो,

2. स्थायी हो, और

3. उसके मिलने में अधिक विलम्ब न हो।

अब हम पहले अभीष्ट गुण को लेते हैं। हम उसी चीज़ को पसन्द करते हैं, जो अच्छी-से-अच्छी हो। उसमें सुन्दरता भी हो और उससे हमें सुख भी मिल सकता हो, उससे हम आनन्दित भी हो सकें और उसे उपयोग में लाने से हमें कोई हानि पहुँचने की आशंका भी न हो। उदाहरणार्थ– हम उस फल को खाना पसन्द करेंगे जो मीठा, खुशबूदार और देखने में भी निगाहों को अच्छा लगता हो। हम उसी आम को खाना पसन्द करते हैं जो रसदार और मीठा होता है और जिसका हमारी पाचन क्रिया पर दुष्प्रभाव न पड़ता हो। इसके साथ हम यह भी चाहेंगे कि यह फल संख्या में इतना अल्प न हो कि हमारी स्वाभाविक इच्छा की पूर्ति न हो सके।

इसी तरह हम अपने लिए उस मकान को पसन्द करेंगे जो कुशादा और हवादार हो और उसमें किसी प्रकार की तंगी महसूस न हो। हम यह भी चाहेंगे कि हमारा वह मकान किसी मनोरम स्थान पर हो। मकान से लगी हुई पुष्पवाटिका भी हो और उसके निकट कोई सरिता भी प्रवाहित हो। फिर हम

यह भी चाहेंगे कि हमारा मकान पृथ्वी के ऐसे भू-भाग में हो जहाँ जलवायु सन्तुलित हो, जो कष्टदायक और हमारे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक न हो। और शायद हम यह भी चाहेंगे कि हमारे पास-पड़ोस के लोग सभ्य हों। दुष्ट प्रकृति के लोगों के साथ रहना हम पसन्द नहीं करेंगे।

किसी चीज़ के सम्बन्ध में दूसरा अभीष्ट गुण यह है कि जो चीज़ हमें प्राप्त हो वह ज़्यादा सामयिक न हो कि अभी हम उसका पूरा आनन्द भी न ले सके हों कि वह चीज़ हमसे छीन ली जाए। हम चाहेंगे कि हमारी पसन्द की चीज़ हमारी मिल्कियत हो। छिन जानेवाली चीज़ सुख से ज़्यादा दुख दे जाती है। मनुष्य उसी चीज़ की कामना करता है जो उसे स्थायी रूप में प्राप्त हो। वह स्वास्थ्य चाहता है तो सदैव के लिए, वह उस धन की इच्छा करता है जो समाप्त न हो, वह नहीं चाहता कि कुछ दिनों के लिए वह धनवान हो जाए और फिर वह दरिद्र होकर इधर उधर भटकता फिरे।

मकान चाहता है तो ऐसा कि वह मकान उसी का हो। ऐसा न हो कि मकान तो बहुत अच्छा हो मगर कुछ दिनों के पश्चात् वह मकान उससे ले लिया जाए और वह बेघर होकर रह जाए, या उसे किसी ऐसे मकान में गुज़र बसर करनी पड़े जो तंग भी हो और जिसके निकट से गंदा नाला बहता हो और मच्छर से अलग परेशान हो।

किसी चीज़ के सम्बन्ध में तीसरा गुण जिसकी हम कामना करते हैं वह यह है कि उसके प्राप्त होने में अत्यधिक विलम्ब न हो। क्योंकि प्राप्त होनेवाली चीज़ इच्छानुसार समय पर नहीं मिलती तो उसे अलभ्य समझा जाएगा, जो उसके हक़ में एक ऐब है। किसी चीज़ के मिलने में स्वभावतः जो विलम्ब होता है उसे ऐब नहीं कहा जा सकता। एक बच्चा पैदा होते ही जवान नहीं हो जाता, उसमें कुछ समय लगता है। और यह प्रतीक्षा-काल भी सुखदायक होता है। बाल्यकाल कितना सुहावना होता है, इसे कौन नहीं जानता, फिर बचपन में बच्चे को जो प्यार मिलता है, फिर उसे स्वप्न में भी नहीं मिल सकता। बचपन में बच्चे की कुँवारी आँखें और अबोध बालक की निश्छलता का भी एक मूल्य है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। फिर बचपन में बालक पर घर-गृहस्थी का कोई बोझ नहीं होता, खेलने के लिए

भी उसके पास पर्याप्त समय होता है और कुछ सीखने और शिक्षा प्राप्त करने का अवसर भी उसे प्राप्त होता है। आगे चलकर जीवन की व्यस्तता में इसका अवसर मिलना नितान्त मुश्किल होता है कि वह एकाग्रचित्त होकर शिक्षा प्राप्त कर सके या किसी कार्य में कुशलता या प्रवीणता प्राप्त करे।

जिन तीन गुणों की चर्चा हमने की है उनके अभीष्ट गुण होने में सन्देह नहीं किया जा सकता, लेकिन जब इन तीन गुणों को अपने समक्ष रखते हुए मानव-जीवन पर निगाह डालते हैं तो कुछ विचारणीय तथ्य हमारे सामने आते हैं। हम चाहते हैं कि उन तथ्यों के आधार पर जीवन के प्रति हम किसी निष्कर्ष पर पहुँचें जिससे जीवन के प्रति हमारा दृष्टिकोण सही और सम्यक् हो। हम जीवन और जगत् को उसके वास्तविक रूप में देख सकें और हर प्रकार के भ्रमों और छलावों से बचते हुए जीवन सम्बन्धी समस्याओं को सम्यक् दृष्टि से देख सकें। समस्याओं का समाधान भी उन्हें सम्यक् दृष्टि से देखने ही पर निर्भर करता है। इस सम्बन्ध में क़ुरआन ने पूर्ण रूप से हमारा मार्गदर्शन किया है।

जब हम गम्भीरता के साथ मानव-जीवन पर विचार करते हैं तो कई तथ्य हमारे सामने आते हैं। एक ओर मानव-जीवन के पीछे सृष्टिकर्ता की शक्ति, सामर्थ्य और उसकी अपार अनुकम्पा क्रियाशील दिखाई देती है। लोगों की आँखों की सुन्दरता, उनके मुखारविन्द उनकी बुद्धि-विवेक और उनकी संवेदनशीलता को देखकर हम चकित रह जाते हैं। हम देखते हैं कि ईश्वर ने मानव पर अपनी दया की पूर्ण वर्षा की है। किन्तु दूसरी ओर हमें कुछ ऐसे पहलू भी दिखाई देते हैं जिनसे कुछ ऐसे प्रश्न पैदा होते हैं जिनका उत्तर पाए बिना हमारा यह दावा कि मानव जीवन से हम भली-भाँति परिचित हैं, बिल्कुल ग़लत होगा। हमने अपनी वार्ता के आरम्भ में जिन तीन गुणों की चर्चा की है, उनको ध्यान में रखते हुए जब हम मानव-जीवन का निरीक्षण करते हैं तो हम देखते हैं कि यह जीवन अपनी उत्तमता के बावजूद अपूर्ण है और अपनी अपूर्णता को छिपाने में असमर्थ है। इस जीवन में जहाँ सुख है वहाँ दुख की भी कमी नहीं है। मानव-इतिहास साक्षी है कि धरती पर बार-बार रक्तपात हुआ। ग़रीब और कमज़ोर वर्ग को सताया गया,

शासक और सत्ताधारी या धनी वर्ग साधारणतया धरती को फ़साद से भरते रहे हैं। दो महायुद्धों की भीषणता हमारे सामने है। इस समय भी दुनिया में संघर्ष चल रहा है। जिसके पास ताक़त है, उसकी दृष्टि में अन्याय भी न्याय है यदि वह अपने हित में हो। झूठ, मक्कारी, छलावा कौन-सी कपटनीति है जो एक-दूसरे के विरुद्ध बेझिझक अपनाई न जा रही हो।

जब हम दूसरे अभीष्ट गुण को दृष्टि में रखकर जगत् और जीवन पर विचार करते हैं तो यह सत्य भी हमारे सामने आता है कि यह जीवन शाश्वत नहीं, बल्कि नश्वर है। मृत्यु जीवन की ताक में रहती है। जीवन में यदि कोई शोक और आपदाओं से किसी हद तक बचा भी रहा तो मृत्यु आकर उससे सब कुछ छीन लेती है। यहाँ तो हर बहार को पतझड़ का मुख देखना पड़ता है। यहाँ यौवन ही नहीं, जीवन भी गुज़र जानेवाला है।

इस प्रकार दूसरे अभीष्ट गुण से भी यह जीवन सुशोभित दीख नहीं पड़ता, बल्कि वैज्ञानिकों का कहना तो यह है कि जीवन ही नहीं, यह जगत् भी शाश्वत नहीं है। यह सूर्य और चन्द्रमा ऐसे नहीं हैं कि सदैव चमकते रहेंगे। उनकी भी एक सीमित आयु है। उनका भी अन्त होगा।

क़ुरआन बताता है कि इस जगत् और जीवन में जो अपूर्णता दिखाई देती है, वह अपूर्णता जान-बूझकर रखी गई है। मानव जिस परिपूर्णता, पूर्णवैभव, निश्चिन्तता और सुख की कामना करता है, तो उसकी यह कामना ग़लत नहीं है। किन्तु यह कामना यहाँ पूरी होने की नहीं है, बल्कि यह कामना स्वयं मनुष्य के किसी और लोक के होने की घोषणा करती है। यह जगत् और वर्तमान जीवन तो इसलिए है कि ईश्वर इसकी परीक्षा ले ले कि वे कौन लोग हैं जो वास्तव में अमरत्व के योग्य हैं। कौन लोग हैं की जो ईश्वर के समाप्त न होनेवाली अनुकम्पा के पात्र हैं। जो लोग इसके पात्र होंगे अनिवार्यतः अमरलोक में उनका स्वागत होगा और उस लोक में जो कुछ उन्हें प्रदान किया जाएगा वह अभीष्ट गुणों से युक्त होगा। ईश्वर की दृष्टि में तो वास्तव में अमरलोक ही है। यह संसार तो जीवन-यात्रा का एक पड़ाव मात्र है। क़ुरआन में है—

"तुम दुनिया के साज़ो-सामान की इच्छा में लगे हो ईश्वर के समक्ष तो परलोक है।" (क़ुरआन, 8:67)

परलोक में सौभाग्यशाली लोगों को वह सब कुछ मिलेगा जिसकी वे कामना करते हैं, इसका विस्तृत वर्णन क़ुरआन ने किया है। वहाँ के सुखमय जीवन का चित्रण, जो क़ुरआन में मिलता है; अनुपम है। रहे वे लोग जिन्होंने वर्तमान जीवन में अपनी कुपात्रता के अतिरिक्त किसी और चीज़ का परिचय नहीं दिया और जिन्होंने ईश्वर की योजना का कोई आदर नहीं किया उनका जो दुखद और भयावह परिणाम होगा, उसकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती।

यह बात स्पष्ट है कि हमारी कामनाओं का लोक तो परलोक ही है। अभीष्ट गुणों का ज्ञान तो मानव को इसलिए दिया गया है ताकि उसे परलोक की खोज हो और इसके लिए वह प्रयत्नशील हो।

यहाँ एक प्रश्न किया जा सकता है कि हमारी कामनाओं और आशाओं का संसार आख़िरत (परलोक) है और वहाँ की हर चीज़ विश्वसनीय होगी, वहाँ सुख और आनन्द है, यौवन और ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त होगा, हम उसके दर्शन भी कर सकेंगे, किन्तु पारलौकिक निधियों के प्राप्त होने में तो मालूम नहीं कितना समय लगेगा जबकि कामनाओं की पूर्ति में अधिक विलम्ब स्वयं एक ऐब है। तीसरे अभीष्ट गुण की चर्चा करते हुए यह कहा गया है कि किसी वस्तु के प्राप्त होने में अधिक विलम्ब का होना असहनीय होने के कारण एक ऐब है। और ईश्वर की योजना में किसी ऐब या दोष की कल्पना करना गुनाह है। इस प्रश्न का उत्तर यह है कि पारलौकिक जीवन की प्राप्ति में विलम्ब नहीं, वह तो बहुत ही निकट (At hand) है। हमें उसके दूर होने का मात्र भ्रम होता है। यदि यह भ्रम दूर हो जाए तो परलोक हमसे कदापि दूर नहीं। क़ुरआन में कहा गया है कि वह दिन दूर नहीं जब किसी के हिस्से में खुशियाँ ही खुशियाँ, होंगी और जिस दिन ईश्वर के विरोधी यातनाग्रस्त होंगे वह दूर नहीं है, वह तो ईश्वर की दृष्टि में बहुत निकट है।

(क़ुरआन, 70:7)

क़ुरआन में आया है कि वह दिन तो प्रातः और संध्या की तरह शीघ्र ही सामने आ जाएगा। लोगों को यह एहसास कदापि न होगा कि उसके आने में घोर प्रतीक्षा करनी पड़ी है। (क़ुरआन, 79:46)

आज तो विज्ञान ने भी यह सिद्ध कर दिया है कि समय केवल सापेक्ष (Relative) है। उसका सम्बन्ध मात्र एहसास से है। जब वह समय आएगा तो लोग देखेंगे कि घटित होनेवाली घटना के घटित होने में विलम्ब बिलकुल नहीं हुआ।

❖❖❖

10

चरित्र-बल

(1) जीवन के प्रति सजगता

(2) वाणी में मधुरता

(3) व्यवहार में सज्जनता

मनुष्य को जो चीज़ पशुओं से विलग करती है, वह है नैतिक चेतना। नैतिक चेतना का स्रोत निर्जीव पदार्थ में नहीं ढूँढा जा सकता। नैतिक चेतना वह अत्यन्त संजीव और पवित्र भाव है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। नैतिक चेतना मानव को भौतिकवादी दृष्टिकोण से ऊपर उठाती है। इमॉनवेल कांट, जिसका कहना है कि बुद्धि की क्षमता अत्यन्त सीमित है और उसके आधार पर सत्य (Reality) के विषय में कोई फ़ैसला नहीं किया जा सकता, वह भी नैतिक चेतना का निषेध नहीं कर सका और यह मानने पर बाध्य हुआ कि नैतिक चेतना के प्रकाश में जो फ़ैसला किया जाएगा वह निराधार नहीं हो सकता। उसकी दृष्टि में ईश्वर के अस्तित्व का सबसे बड़ा प्रमाण भी मानव के व्यक्तित्व में पाई जानेवाली नैतिक चेतना ही है।

नैतिक चेतना ही पर वास्तव में चरित्र निर्भर करता है। चरित्र की श्रेष्ठता ही व्यक्ति को महान बनाती है। मानव की वास्तविक शक्ति और बल उसका चरित्र ही है। यूँ तो चरित्र के सम्बन्ध में उसके विभिन्न पहलुओं को देखते हुए बहुत विस्तार में जाया जा सकता है, किन्तु विस्तार में न जाकर हम चरित्रवान व्यक्ति के कुछ लक्षणों का उल्लेख यहाँ करना चाहते हैं।

सबसे पहली बात तो यह है कि मानव को जो जीवन प्रदान किया गया है वह सबसे बड़ी निधि है। किसी ने कहा है– 'जान है तो जहान है प्यारे', किन्तु जीवन के महत्व को आमतौर पर समझा नहीं जाता। जीवन पाकर व्यक्ति को वह समृद्धि प्राप्त हो जाती है जिसकी खुशी की कोई सीमा नहीं। फिर भी लोग साधारणतया चिन्तित और उदास दिखाई देते हैं और उन्हें यह याद ही नहीं रहता कि खुशी की सबसे बड़ी चीज़ 'जीवन' हमें स्वतः उपलब्ध है। चरित्रवान व्यक्ति का पहला लक्षण है कि वह इस बात को

भली-भाँति जानता होता है कि जीवन के प्रति सजगता अनिवार्य है। यदि कोई जीवन के प्रति सजग नहीं है तो उसके लिए जीवन का मिलना और न मिलना दोनों बराबर हैं।

जीवन के प्रति सजगता से अभिप्रेत यह है कि मनुष्य जीवन के महत्व को समझता हो और जीवन के प्रति जो ज़िम्मेदारियाँ उसपर आती हों उन ज़िम्मेदारियों को पूरा करने से वह जी न चुराता हो। बड़ी चीज़ अपने साथ भारी ज़िम्मेदारी लेकर आती है। यदि हमें जीवन मिला है तो इसके साथ हमारी कुछ ज़िम्मेदारियाँ भी होंगी। क़ुरआन मजीद इसी लिए अवतरित हुआ है कि वह हमें बताए कि जीवन के प्रति हमारा दायित्व क्या है और उसका निर्वाह हम कैसे कर सकते हैं।

चारित्रिक गुण कोई शुष्क चीज़ कदापि नहीं है। उसमें सौन्दर्य भी पाया जाता है और आकर्षण भी। यदि कोई वास्तव में चरित्रवान है तो वह हमें बुझे हुए दीप की तरह नहीं बल्कि खिले हुए फूल की तरह दिखाई देगा। उसकी वाणी में मधुरता होगी। यही मधुरता चरित्र का दूसरा विशिष्ट लक्षण है।

व्यक्ति निर्जीव नहीं होता कि पत्थर की तरह कहीं पड़ा रहे। वह चलता-फिरता है। भला-बुरा कुछ कार्य करता है, लोगों के सम्पर्क में आता है, लोग उसके सम्पर्क में आते हैं। व्यवहार में आदमी को किस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए इसे हम अक्सर भूल जाते हैं और हमारे पैर उस रास्ते पर जा पड़ते हैं जो वास्तव में हमारी राह नहीं है। व्यवहार में जिस चीज़ का ध्यान रखना हमारे लिए अनिवार्य है वह है सज्जनता। सज्जनता की डोर किसी दशा में भी हमारे हाथ से छूट न जाए इसका ख़ास ख़याल रखना हमारे लिए ज़रूरी है। व्यवहार में यही सज्जनता चरित्रवान का तीसरा विशेष गुण है।

जो व्यक्ति जीवन के प्रति सजग है, जिसकी वाणी में मधुरता पाई जाती है और जो व्यवहार में सज्जनता की कभी भी उपेक्षा नहीं करता, समझ जाइए कि वह चारित्रिक गुणों से सम्पन्न है और चरित्र-बल के होते हुए उसे कभी भी पराजित नहीं किया जा सकता। जीत में तो उसकी जीत है ही, हार में भी वास्तव में उसी की जीत है।

❖❖❖

11

ईमान : पहचान और परीक्षा

(1) यक़ीन

(2) अच्छी आशा

(3) आसक्ति

इस्लाम में ईमान को मौलिक महत्व प्राप्त है। ईमान के बिना हम इस्लाम की कल्पना भी नहीं कर सकते। ईमान ही इस्लाम की आत्मा और न्युक्लियस (छनबसमने) है। ईमान न हो तो वे सारे काम जो हम करते हैं, और उन्हें धार्मिक समझ कर करते हैं, निरर्थक होकर रह जाएँगे। यदि कार्य ही को वास्तविक उद्देश्य ठहरा लिया जाए और उसके पीछे कोई रहस्य और राज़ न हो और न उसकी कोई आत्मा हो तो कार्य बोझ बनकर रह जाएगा, और ऐसे कार्य हमारे जीवन को शुष्क बना कर रख देंगे। इस शुष्कता को दूर करने का एक ही उपाय है कि मोमिनाना जीवन व्यतीत किया जाए। केवल रस्मी ईमान से काम चलने का नहीं। हमें वह ईमान चाहिए जो जीवन्त हो। वह हमारे जीवन की वास्तविक निधि बनकर रहे, जिसका अभाव हमारे लिए असहनीय हो जाए, जिसके बिना जीना हमें असम्भव प्रतीत हो।

हमें ईमान की दौलत हासिल है या नहीं? हमारा ईमान ज़िन्दा है या नहीं? वह हमारे चरित्र का आधार और उसकी शक्ति बन सका है या नहीं? वह हमारे जीवन को सुन्दरता से आभूषित कर सका है या नहीं? वह स्वयं सुन्दर है या नहीं? इन सब बातों की हमें परीक्षा करनी होगी।

हम अपने ईमान का सर्वेक्षण किस तरह करें? हम यह कैसे जान सकें कि हमने अपने जीवन में ईमान को क्या स्थान दिया है? इसके लिए आवश्यक है कि हम ईमान के लक्षणों में से कुछ मौलिक लक्षण निर्धारित कर लें। फिर उन लक्षणों की सहायता से हम किसी समय भी अपनी ईमानी दशा

का अवलोकन कर सकते हैं। अवलोकन से यदि यह मालूम हुआ कि हमारा ईमान तेजहीन है तो फिर हमें इसकी चिन्ता होगी कि हम अपने ईमान में शक्ति कैसे और कहाँ से लाएँ। ईमान के यूँ तो कई लक्षण हो सकते हैं लेकिन उसके विशेष तीन लक्षण हैं :

1. यक़ीन (विश्वास)

यक़ीन, ईमान का पहला गुण या लक्षण है। यक़ीन के बिना ईमान के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। मिसाल के तौर पर किसी को यदि यह यक़ीन ही नहीं है कि ख़ुदा है तो फिर वह ईमान की दौलत से वंचित ही रहेगा, क्योंकि जिस ईमान की हम बात कर रहे हैं वह भौतिक जगत् पर ईमान लाने की बात नहीं है। भौतिक जगत् पर तो हर व्यक्ति प्रत्यक्षतः विश्वास करने के लिए बाध्य है। ईमान का अस्तित्व और उसकी सत्ता जो हमारे अस्तित्व का वास्तविक आधार है उस पर अगर हमें विश्वास न हो तो उसका अर्थ इसके सिवा कुछ नहीं होता कि हमारे जीवन का हमारी दृष्टि में कोई मौलिक आधार नहीं है। आधार न होने के कारण यह जीवन उद्देश्यहीन होकर रह जाएगा। अर्थात् इस जीवन का कोई उच्च उद्देश्य न होगा। हम उस समय भी खा पी रहे होंगे, साँस ले रहे होंगे, किन्तु खाना-पीना और साँस लेना ही जीवन नहीं है। यह क़ार्य तो पशु, पक्षी और कीड़े-मकोड़े भी करते हैं।

ईमान की पहली बुनियाद यह है कि हमारा एक ईश्वर और प्रभु है और वही हमारा सब कुछ है। ईश्वर सर्वशक्तिमान ही नहीं, सर्वगुण सम्पन्न भी है। दुर्बलता उसे छू नहीं सकती। करुणा उसमें है, दानशीलता उसमें पाई जाती है। वह अपने चाहनेवालों के निकट होता है और उनपर दया और प्रेम दर्शाता है।

ईश-ज्ञान (Awareness of God) के बिना आदमी की दरिद्रता कभी दूर नहीं हो सकती। ईश्वर के अतिरिक्त परलोक आदि पर ईमान वास्तव में ईश्वर पर ईमान लाने ही की परिपूर्णता का दूसरा नाम है। परलोक या आख़िरत उसी की सल्तनत है। किसी सम्राट क़ी कल्पना साम्राज्य के बिना सम्भव नहीं है। ईश्वर और उसके न्याय आदि पर अगर विश्वास न हो तो आदमी की पूरी ज़िन्दगी बेयक़ीनी की हालत में गुज़रेगी। ईश्वर के बिना वह

अपूर्ण है। उसे परितोष और तृप्ति का मिलना असम्भव है। जिस व्यक्ति को यक़ीन की दौलत प्राप्त न हो उसे कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती। वह विभिन्न कार्यों में व्यस्त रहकर कोशिश करेगा कि उसके जीवन में पाई जानेवाली रिक्तता उसे महसूस न हो या उसे उसका कम से कम आभास हो।

(2) अच्छी आशा

ईमान का यह दूसरा लक्षण है। वास्तव में आशा ईश्वर ही से की जा सकती है। वही है जिसके पास सब कुछ है। वह चाहता है कि यह अनुग्रह सामयिक न हो, बल्कि स्थायी एवं पूर्ण हो। इसी पूर्णता के प्रदर्शन को परलोक या आख़िरत का जीवन कहते हैं। प्यारे नबी (सल्ल॰) ने कितना सच कहा है कि *"जीवन तो बस आख़िरत का जीवन है।"*

ईश्वर से अच्छी आशा वह शक्ति है जिससे जीवन को तेज और बल सब कुछ मिलता है। और यही आशा है जो जीवन-पथ पर आदमी को हमेशा अग्रसर रखती है। यह आशा न हो तो आदमी टूटकर रह जाएगा। जो ईश्वर को नहीं मानते या मानते तो हैं मगर उनका मानना केवल रस्मी-सा होता है, वे टूटे हुए दिखाई देते हैं। उनके जीवन में स्फूर्ति, ताज़गी और ऐसी प्रफुल्लता दिखाई नहीं देती जो हृदय को आकर्षित कर सके। ईश्वर से अच्छी आशा न रखना इतना बड़ा गुनाह है कि इसे कुफ़्र (कृतघ्नता) कहा गया है, और उससे अच्छी आशा रखना वास्तव में उसकी पूजा और वन्दना है।

(3) आसक्ति

ईमान का तीसरा और अन्तिम लक्षण है आसक्ति या प्रेम। प्रेम के बिना कोई भी कहानी पूर्ण नहीं कही जा सकती। फिर ईमान इसके बिना कैसे जीवन-निधि बन सकता है। ईमान में ईश्वर के प्रति मुहब्बत या प्रेम सम्मिलित होता है। ईश्वर में विश्वास तो हो किन्तु उससे प्रेम न हो तो फिर इस विश्वास या यक़ीन को ईमान नहीं कह सकते। प्रेम के बिना ईमान अस्तित्व में नहीं आता और न स्थिर रहता है। यह प्रेम और आसक्ति ही है जो जीवन को ख़ुशियों और आनन्द से भर देती है और जिसके कारण जीवन भावमय हो ज़ाता है। उसमें निराशा की कोई कालिमा शेष नहीं रहती।

ईमान के उपर्युक्त लक्षण ऐसे हैं जिनसे एक ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण होता है जिसे हम पूर्ण व्यक्तित्व (Perfect Personality) कह सकते हैं। और हम जानते हैं पूर्णता (Perfection) ही जीवन का लक्ष्य हो सकता है। और जीवन इसी पूर्णता की ओर गतिमान रहता है। और यही गतिशीलता जीवन का मुख्य लक्षण है।

❖❖❖

12

ज़िन्दगी का एक ख़ास क़ानून

(1) परिपूर्णता

(2) शरीरिक परिपूर्णता

(3) आत्मिक पूर्णता एवं सौन्दर्य बोध

क़ुरआन की एक आयत है –

"हमारा रब वह है जिसने हर चीज़ को उसकी आकृति दी, फिर तदनुकूल निर्देशन किया।" (20:50)

इस आयत में एक मौलिक क़ानून का उल्लेख किया गया है, और वह क़ानून यह है कि ईश्वर ने दुनिया में जो चीज़ें भी पैदा की हैं, उन्हें उनके बनाए जाने के वास्तविक उद्देश्य के अनुसार आकृति प्रदान की है। फिर जिस विशेष उद्देश्य के अन्तर्गत कोई चीज़ पैदा होती है, ईश्वर उसे उसी उद्देश्य के मार्ग पर लगा देता है। जब तक कोई वस्तु अपनी सृष्टि के उद्देश्य को पूरा नहीं करने लगती वह अपूर्ण दशा में होती है। अपने उद्देश्य की अभिव्यक्ति ही में उसकी सार्थकता प्रकट होती है।

जिस चीज़ से जो काम लेना होता है, उसकी प्रकृति और उसकी बनावट सब कुछ उस अभीष्ट कार्य के अनुकूल होती है। चिड़ियों को वायुमण्डल में उड़ना है तो इसके लिए ईश्वर ने चिड़ियों के शरीर की रचना भी ऐसी की जो उनके उड़ने में सहायक हो सके। उसे पंख भी दिए और शारीरिक संरचना भी ऐसी रखी कि वह वायुमण्डल में आसानी से उड़ सके। मछलियों को पानी में तैरना होता है, तो हम देखते हैं कि इसके लिए एक ऐसा शरीर दिया गया जो पानी में तैर सके और पानी में रहना और तैरना उसका स्वभाव हो।

फूल का एक पौधा जब हम अपने गमले में लगाते हैं तो वह बढ़ता और हरा-भरा होता है। यहाँ तक कि वह अपनी तरुणाई पर आ जाता है और

उसमें पत्तियाँ ही नहीं, बल्कि कलियाँ भी लग जाती हैं। और फिर वे कलियाँ खिल जाती हैं और फूल अपनी सुगन्ध बिखेरने लगता है। फूल के पौधे में महकते फूल लग गए तो हम समझते हैं कि अब उसे कुछ और नहीं होना है, उसने अपने जीवन के अभिप्राय को पा लिया जिसकी तरफ़ वह अपने पहले दिन ही से अग्रसर दिखाई देता था। वह पौधा अगर फूल खिलने से पहले ही सूख जाता तो यही कहा जाता कि नष्ट हो गया। इसलिए कि वह अपने उद्देश्य को प्राप्त न कर सका।

संसार में हर चीज़ अपनी परिपूर्णता और कमाल को प्राप्त करना चाहती है। यही जीवन का क़ानून है और यही जीवन का वास्तविक प्रेरक भी। इसी अपने नैसर्गिक रुझान और प्रवृत्ति को लेकर हर चीज़ जगत् में अस्तित्व में आती है। यह क़ानून पूर्णतः मानव-जीवन ही में लागू हो सकता है। ऐसे लोग बड़े ही भाग्यवान हैं जो इस क़ानून से परिचित हैं और जो इस क़ानून के उल्लंघन को एक संगीन अपराध समझते हैं। क़ुरआन में इस क़ानून का उल्लेख करते हुए स्पष्टतः बताया गया है कि इस क़ानून का क्रियान्वयन मानव-जीवन ही में सबसे बढ़कर फलदायक है। इसलिए इस क़ानून का उल्लंघन मनुष्य के लिए भी किसी अभिशाप से कम नहीं है।

क़ुरआन में है—

> "तसबीह (गुणगान) करो, अपने सर्वोच्च रब के नाम की जिसने पैदा किया, फिर ठीक-ठाक किया, जिसने निर्धारित किया, फिर मार्ग दिखाया। जिसने वनस्पति उगाई, फिर उसे घनी और हरी-भरी कर दी।" (87:1-5)

फिर आगे चलकर क़ुरआन में कहा गया,

> "सफल हो गया वह व्यक्ति जिसने अपने आप को परिपूर्ण एवं विकसित किया।" (87:14)

यही परिपूर्णता मनुष्य की अस्ल उपलब्धि और उसकी वास्तविक सम्पदा है। इस परिपूर्णता का पता चलता है प्रभु के उस-आभास से जो उसे प्राप्त होता है, जिसकी ओर वह उन्मुख होता और उसके साथ एकात्मता का सम्बन्ध स्थापित करता है। (क़ुरआन, 87:15)

मानव-ज़ीवन में उस क़ानून का, जिसका उल्लेख आरम्भ में किया गया है, क्रियान्वयन केवल इस बात से पूर्ण नहीं होता कि मनुष्य बाल्यावस्था से गुज़र कर प्रौढ़ता और युवावस्था को प्राप्त कर लेता है। यह परिपूर्णता तो केवल शारीरिक हुई। मनुष्य मात्र शरीर ही तो नहीं है। वह शरीर के अतिरिक्त रूह या आत्मा भी है, बल्कि मूलतः वह आत्मा ही है। यह और बात है कि सामान्य निगाहों से वह दिखाई नहीं देता, किन्तु जो अदृश्य (Unseen) है, वही सत्य से अधिक निकट होता है। मानो कि आत्मिक अस्तित्व की दृष्टि से उसकी परिपूर्णता का अर्थ अत्यन्त उत्कृष्ट एवं उच्च होगा और इस परिपूर्णता का आशय यह होगा कि 'मनुष्य जीवन के मूल उद्‌गम से जुड़ गया, उसने अपने जीवन में परमात्मा को पा लिया। नदी सागर से परिचित हो गई, किरण अपने सूरज से संपृक्त हो गई, उसने अमरता को छू लिया। यह परिपूर्णता कोई नीरस-चीज़ नहीं है। यहाँ चेतना मात्र चेतना न रहकर सौन्दर्यबोध में परिवर्तित हो जाती है, जैसे पत्ती फूल बन जाए। वनस्पतिज्ञ (Botanist) कहते भी हैं–

"Flower is the modification of leaves."

इस सौंदर्यबोध में किसी प्रकार का कलुष या मलिनता नहीं होती। यहाँ प्रेम अपने शुद्धतम रूप में प्रगट होता है। जीवन की मधुरता सदैव इसकी ऋणी रहेगी। इस क़ानून की एक विशेषता यह है कि अपने चरम को पाकर हर चीज़ पूर्ण काम हो जाती है। उसे शान्ति प्राप्त होती है, बिखराव और भटकाव समाप्त हो जाता है। उसपर से बोझ उतर जाता है। इस स्थिति में मानव अपने को हलका महसूस करता है, किसी प्रकार का तनाव बाक़ी नहीं रहता। जो उसपर प्रकट होता है वह इतना क़ीमती होता है कि आदमी हर चीज़ से बेनियाज़ हो जाता है। अब वह एक ऐसी फ़िज़ा में साँस ले रहा होता है जहाँ हर चीज़ प्रत्यक्ष होती है। उसे अपनी मंज़िल मिल गई होती है। इस स्थिति के विभिन्न नाम दिए जाते हैं। किसी ने इसे जागरण या बोध कहा, तो किसी ने इसे आनन्द या सच्ची खुशी के नाम से याद किया और किसी ने इसे समाधि से अभिव्यंजित किया।

❖❖❖

13

धर्म के आन्तरिक लक्षण

(1) स्वाद

(2) जीवन के औचित्य का आधार

(3) अन्तः प्रकाश

आन्तरिक रूप से धर्म के लक्षण क्या हैं? इस प्रश्न के कई उत्तर दिए जा सकते हैं और दिए जाते हैं। इस समय हम धर्म के मुख्य तीन लक्षणों के विषय में विचार करना चाहेंगे।

धर्म के आन्तरिक लक्षणों में से एक लक्षण उसका स्वाद (Taste) और ज़ौक़ है। इसका सम्बन्ध मानव की अभिरुचि से होता है। कहा भी गया है कि "Belief is literally a matter of taste." यदि किसी आस्था एवं विश्वास (धर्म) का सम्बन्ध अक्षरशः स्वाद एवं अभिरुचि से है, यदि किसी की धार्मिकता केवल उसके बाह्य कर्मों पर निर्भर करती है तो यह धार्मिकता अपूर्ण और दोषयुक्त है। ऐसी धार्मिकता से उसे कभी सच्ची ख़ुशी और शान्ति नहीं मिल सकती। बल्कि ऐसी धार्मिकता तो उसके जीवन में बाधाएँ ही खड़ी करती रहेगी। मनुष्य के लिए सच्चा धर्म वही हो सकता है जो उसके बाह्य जीवन और उसके अन्तर दोनों ही से सम्बद्ध हो, जिसकी परिधि इतनी विस्तृत हो कि वह हमारे बाह्य जीवन और अन्तर दोनों ही को परिष्कृत कर सकता हो।

ऐसा पूर्ण धर्म, जिसकी ओर हमने संकेत किया है, मानव-निर्मित कदापि नहीं हो सकता। मानव-बुद्धि की अपनी सीमाएँ हैं जिनसे आगे वह नहीं जा सकती। हमारे अन्तर के रहस्य और उसकी अपेक्षाएँ बुद्धि की पकड़ में नहीं आ सकतीं। हमारी आन्तरिक कामनाओं एवं अभिलाषाओं को हमसे अलग नहीं किया जा सकता। वे तो हमारे जीवन का अभिन्न अंग हैं। आन्तरिक अभिरुचि और अपनी वास्तविक प्रवृत्ति की उपेक्षा करके हम जिस जीवन-प्रणाली को प्रस्तावित करेंगे, वह जीवन-प्रणाली निष्प्राण ही न होगी, बल्कि उसमें

कितनी ही त्रुटियाँ मौजूद होंगी। और इन सबका बड़ा कारण हमारा अज्ञान होगा। अतः एक सच्चे और पूर्ण धर्म के निर्देश की ईश्वर ही से आशा की जा सकती है। ईश्वर की ओर से अवतरित धर्म से हटकर जो धर्म या जीवन-शैली भी होगी वह पथभ्रष्टता से मुक्त नहीं होगी। ईश्वर निर्देशित धर्म केवल यही नहीं कि पथभ्रष्टताओं से मुक्त होगा, बल्कि उसकी विशेषताओं और उसमें निहित तत्वदर्शिता और मार्मिकता पर हम जितना भी विचार करेंगे हमें हैरानी होगी और अन्ततः हम एक विस्मयकारी आनन्द में डूब जाएँगे। इसके दर्पण में हम अपने वास्तविक स्वरूप की झलक देख रहे होंगे। ऐसे धर्म को ग्रहण करने से पहले हमारी अभिरुचि जैसी भी रही हो किन्तु इस धर्म को पूर्णतः ग्रहण करने के पश्चात हमारी अभिरुचि कुछ और हो जाएगी। उसमें तमस (अन्धकार और अज्ञान) का लेशमात्र भी न होगा। उसमें एक प्रकार की मधुर-मादकता आ जाएगी जो पवित्रता लिए हुए होगी और भक्ति-भाव उसे अनुप्राणित कर रहा होगा।

व्यक्ति के चरित्र का विशेष सम्बन्ध उसके कर्मों और उसके बाह्य प्रयासों से होता है। किन्तु आदमी का ज़ौक़ स्वयं उसकी अस्मिता और उसके निजत्व (Self) का परिचायक होता है। अतः इसे मनुष्य के व्यक्तित्व का दर्पण कह सकते हैं। किसी ने कहा है कि—

"The style is the man himself."

ठीक इसी तरह यह भी सत्य है कि—

"The taste is the man himself."

आदमी के रंग-ढंग और उसकी जीवन-शैली से यह पता चलता है कि वह क्या है। वहीं उससे कहीं अधिक आदमी की अभिरुचि बताती है कि वह क्या है और क्या नहीं है।

धर्म ही जीवन के अस्तित्व में आने को औचित्य (Justification) प्रदान करता है। धर्म की विशेषता उसका दूसरा आन्तरिक लक्षण है। धर्म के अतिरिक्त कोई ऐसी उच्च और अर्थयुक्त चीज़ नहीं पाई जाती जिसे जीवन के औचित्य का आधार कहा जा सके और इस विषय में किसी प्रकार के संशय की गुंजाइश न हो। जीवन को उपदेशहीनता और दोषपूर्णता से जो चीज़ बचा सकती है वह धर्म ही हो सकता है। कारण यह कि जीवन को

हर प्रकार के आरोपों से वही चीज़ बचा सकती है जिसमें अलौकिकता की विशेषता पाई जाती हो। क्योंकि मात्र लौकिक उद्देश्य चाहे कितना ही आकर्षक क्यों न हो, स्रष्टा की सृजन-शक्ति को प्रेरित नहीं कर सकता। धर्म को त्याग कर जीवन की वैधता को कोई व्यक्ति सिद्ध नहीं कर सकता। जीवन प्रदान करनेवाला ईश्वर है तो वही चीज़ जीवन के औचित्य का आधार हो सकती है जिसका किसी न किसी पहलू से ईश्वरीय इच्छा और ईश्वरीय संकल्प से सम्बन्ध हो। इसी से इस बात का पता चलता है कि मानव जीवन के वास्तविक उद्देश्य में अलौकिकता का समावेश अनिवार्य है। क्योंकि इसके बिना जीवन का जो उद्देश्य भी निर्धारित किया जाएगा उसका यही नहीं कि ईश्वर से कोई सम्पर्क न होगा, बल्कि वह उद्देश्य भी महानता से वंचित रह जाएगा। स्पष्ट है कि वह चीज़ धर्म ही हो सकता है। क्योंकि धर्म कहते ही हैं ईश्वरीय इच्छा के अनुपालन को।

जब तक व्यक्ति में धर्म को इस दृष्टि से देखने की योग्यता न पाई जाए कि धर्म मानव जीवन का एक विधि-विधान और एक मार्ग ही नहीं है जिसपर चलकर मनुष्य सफल हो सकता है बल्कि धर्म के कारण ही मानव जीवन को प्रतिष्ठा मिलती है और उसी के प्रकाश में जीवन के सूक्ष्मतम रहस्यों का उद्घाटन होता है। धर्म ही है जो हृदय के मर्मस्पर्शी ज्ञान का वाहक है।

धर्म ही हमें बताता है कि जीवन का आशय और उसका अन्तिम अभिप्राय क्या है। वही बताता है कि व्यक्ति को क्रमशः किस शिखर और नित्यता की स्थिति को प्राप्त करना है। धर्म के द्वारा ही हमें यह ज्ञात होता है कि हमारे जीवन का वास्तविक स्वभाव और उसकी अन्तिम प्रगति क्या है? इस प्रगति का एहसास मनुष्य को इतना आकर्षित करता है कि वह लौकिक जीवन की सामान्य वस्तुओं से बढ़कर जीवन की अन्तिम प्रगति के सौंदर्य को प्राथमिकता देता और उसके एहसास से अपने वर्तमान जीवन को समृद्ध बनाता है। इस प्रकार उसका यह लौकिक जीवन सांसारिक निधियों के द्वारा कम और अपने भविष्य के द्वारा अधिक समृद्ध प्रतीत होता है। ऐसा उस अनावृत अन्तःप्रकाश (Vision) के कारण सम्भव होता है, जो धर्म का ही एक अंग है और उसे हम धर्म का तीसरा अन्तिम लक्षण कह सकते हैं।

❖❖❖

14

सम्बन्ध

(1) अपने आप से
(2) लोगों से
(3) ईश्वर से

व्यक्ति की सफलता और उसके व्यक्तित्व की पूर्णता इस पर निर्भर करती है कि सम्बन्ध और सम्पर्क के सिलसिले में उसकी नीति और धारणा क्या है। वह लोगों से नितान्त अलग-थलग रहकर जीवन व्यतीत करना चाहता है या लोगों से सम्बन्ध बनाने में विश्वास रखता है। सत्य यह है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, समाज में पैदा होता और उसी में पलता-बढ़ता है। समाज से पलायन किसी अपराध से कम नहीं। सम्बन्ध और सम्पर्क के विषय में जब हम विचार करते हैं तो ज्ञात होता है कि मनुष्य के सम्बन्ध तीन प्रकार के होते हैं।

1. मनुष्य का सम्बन्ध स्वयं अपने आप से

जब तक तीनों प्रकार के सम्बन्ध स्थापित नहीं होते मनुष्य की हैसियत एक कटी हुई पतंग की होती है जिसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता कि वह जाकर किस वीराने या नाली में गिरेगी। हम यहाँ तीनों प्रकार के सम्बन्धों के विषय में कुछ कहना चाहेंगे।

मनुष्य का जो सम्बन्ध स्वयं उसके अपने व्यक्तित्व से होता है उसे 'प्रज्ञा' कहते हैं। अर्थात मनुष्य का सर्वप्रथम कर्तव्य होता है कि वह अपने को पहचाने। अपनी पहचान मनुष्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है। यदि वह अपनी हैसियत और अपनी महानता को नहीं जानता जो ईश्वर ने उसे प्रदान की है तो फिर उससे यह आशा नहीं की जा सकती कि वह कभी अपना हक़ अदा कर सकता है। और अपनी महानता से अनभिज्ञ रहने के कारण वह ईश्वर का आभार स्वीकार नहीं कर सकता। कोहेनूर हीरे को यदि अपने मूल्य

का ज्ञान नहीं है तो इस अनभिज्ञता के कारण उसे अपराधी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि कोहेनूर में चेतन-शक्ति नहीं पाई जाती। इसके विपरीत मनुष्य यदि अपनी महानता से अनभिज्ञ रहता है तो इसे एक अक्षम्य अपराध समझा जाएगा।

मनुष्य का यह दायित्व है कि अपने आपको पहचाने। ईश्वर ने मनुष्य को धरती पर बहुत कुछ शक्ति और अधिकार देकर भेजा और धरती एवं आकाश की समस्त चीज़ों को उसकी सेवा में लगा रखा है। सूरज उसके लिए उदय होता है। तारे उसके लिए चमकते हैं। वर्षा ऋतु उसके लिए आती है। बादल उसके लिए उमड़-उमड़कर आते हैं। धरती में पेड़-पौधे उसके लिए उगाए गए हैं। फूल उसके लिए खिलते हैं। पक्षी उसके मनोरंजन के लिए गाते हैं। ईश्वर ने मनुष्य को विशेष गुणों से सम्पन्न किया है। उसमें चेतना और संकल्प-शक्ति है। विचार और कर्म-शक्ति भी उसे प्राप्त है। वह देखता है, सुनता है, समझता है और तर्कयुक्त निर्णय करता है। उसके हृदय में दयाभाव और करुणा भी रखी गई है और उसके मन में क्रोध की चिंगारी भी पाई जाती है। वह नफ़रत भी कर सकता है और प्रेम भी। उसमें दानशीलता भी पाई जाती है और त्याग की भावना भी। ये समस्त गुण इस बात का पता देते हैं कि उसका अपना विशिष्ट व्यक्तित्व है। यही वह चीज़ है जो उसे अन्य समस्त चीज़ों के मुक़ाबले में विशिष्टता प्रदान करती है। यदि मनुष्य अपनी इस विशिष्टता को नहीं पहचानता तो फिर वह सामान्य पशुओं के स्तर पर जीवन व्यतीत करेगा, केवल खाने-पीने और भोग-विलास को जीवन का परम लक्ष्य समझने लगेगा, और पाशविक स्तर से उच्च होकर सोचने-समझने और जीवन व्यतीत करने में वह असमर्थ सिद्ध होगा। इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य को शरीर दिया गया है और उसे भूख-प्यास भी लगती है, किन्तु मनुष्य मात्र शरीर नहीं है बल्कि शरीर से पहले वह आत्मा है। शरीर तो आत्मा की सेवा के लिए है। सही बात यह है कि :

"You are a soal with a body, not a body with a soal."

वास्तव में मनुष्य आत्मा है किन्तु शरीर को प्राथमिकता देने के कारण मात्र भौतिक शरीर बनकर रह गया है और यही उसके नैतिक व आध्यात्मिक

पतन का वास्तविक कारण है। सारी साधनाओं और तपस्याओं का निचोड़ यह है कि मनुष्य प्राथमिकता आत्मा और आत्मा की अपेक्षाओं को दे। लेकिन साधारणतया ऐसा हो नहीं पाता। रमज़ान का पूरा एक महीना इसके लिए ख़ास कर दिया गया है कि मनुष्य शारीरिक आवश्यकताओं की अपेक्षा आत्मिक अपेक्षाओं को प्रमुखता देने में सफल हो सके। हक़ीक़त यह है कि जब तक मनुष्य को आत्मा के तल पर जीना नहीं आता ईश्वर उसकी आवश्यकता नहीं बन सकता। वह भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति ही पर सन्तुष्ट होकर रहेगा।

जब मनुष्य को अपनी विशिष्टता और महानता का आभास होने लगता है तो फिर उसका सिर ईश्वर के समर्पित होकर रहता है। फिर वह ईश्वरीय आदेशों के अनुरूप चलता है और नैतिक एवं आध्यात्मिक अपेक्षाओं के विरुद्ध नहीं जा सकता। वह संकुचित दृष्टिकोण को त्याग देता है और ईश्वर का आज्ञाकारी और उसका शुक्रगुज़ार बंदा बनकर रहता है।

2. मनुष्य का सम्बन्ध लोगों से

दूसरे प्रकार का सम्बन्ध या सम्पर्क वह है जो हम अपनी सहजाति अर्थात मनुष्यों के साथ स्थापित करते हैं। लोगों से हमारा सम्बन्ध तो होता ही है, क्योंकि हम समाज से विलग होकर नहीं रह सकते। जानने की बात यह है कि इस सम्बन्ध का वास्तविक आधार क्या होना चाहिए।

लोगों से हमारा जो सम्बन्ध और सम्पर्क होगा उसका आधार शील है। यह वह नैतिक आधार है जो हमें लोगों से जोड़ता है और जोड़े रखता है। लोगों में अपने कुटुम्ब के लोग भी सम्मिलित हैं, पड़ोस के लोग भी और जगत के सारे ही लोग इसके अन्तर्गत आ जाते हैं। लोगों में हमारे मित्र भी हो सकते हैं और शत्रु भी। इसमें वे लोग भी शामिल हैं जिनसे हमारा कोई अनुबन्ध होता है और इसमें वे लोग भी शामिल हैं जिनसे हमारा युद्ध हो रहा हो। प्रत्येक दशा में प्रत्येक व्यक्ति और वर्ग के सम्बन्ध में हमारा जो निर्णय होगा उसका आधार क्रोध और अहंकार कदापि नहीं होना चाहिए। हम जो निर्णय भी करेंगे यह देखकर करेंगे कि अख़लाक़ और नैतिकता (Morality) का तक़ाज़ा क्या है। यदि हम इस नियम को नहीं भूलते तो सही

अर्थों में हमारा सम्बन्ध लोगों से उचित आधार पर स्थापित है।

3. मनुष्य का सम्बन्ध ईश्वर से

तीसरा सम्बन्ध वह है जो हम अपने ईश्वर के साथ स्थापित करते हैं। हमारा सम्बन्ध जो ईश्वर से होता है वह अपने में इतनी सत्यता, मधुरता और आत्मीयता रखता है कि इसे व्यक्त करने के लिए शब्दकोश के समस्त शब्द छोटे पड़ जाते हैं। फिर भी इसकी ओर संकेत करने के लिए शब्दों का प्रयोग करना ही पड़ता है। भारतीय साधकों ने इसके लिए जो शब्द चुना है वह शब्द है 'समाधि'। इसमें सन्देह नहीं कि ईश्वर ही है जिसकी याद से दिलों को चैन मिलता है, आत्मा को शान्ति प्राप्त होती है और चरित्र को बल मिलता है। व्यक्ति पूर्ण काम उसी समय हो सकता है जबकि जीवन में तल्लीनता की कोई स्थिति भी आती हो। ईश्वर के प्रति समर्पण जब तक पूर्ण समर्पण नहीं है तब तक व्यक्ति एक प्रकार की चोरी में लिप्त रहता है।

हम ईश्वर के समस्त आदेशों का पालन करें और उसके क्रोध से भयभीत रहें। उसकी प्रसन्नता के अभिलाषी हों। उसकी याद हमारी आत्मा का सहारा हो। उसमें तल्लीन होकर हम आराम पाएँ तब समझिए कि उससे हम सम्बन्ध स्थापित कर सके। हाँ, एक बात तो कहनी रह गई कि जब तक हम ईश्वर की उस योजना को क्रियान्वित करने में उसके साथ सहयोग नहीं करते तब तक हमारा सम्बन्ध भी उससे अधूरा-अधूरा ही रहेगा।

❖❖❖

15

परिवार

(1) समर्पण

(2) नर्म स्वभाव और विनम्रता

(3) सेवा की भावना

परिवार का मानव-जीवन में बड़ा महत्व है। पारिवारिक जीवन के माध्यम से ही मनुष्य का वास्तविक व्यक्तित्व हमारे समक्ष आता है। यही कारण है कि नबी *(सल्ल.)* ने कहा है कि–

"तुम में सबसे अच्छा व्यक्ति वह है, जो अपने परिवारवालों के लिए अच्छा हो।" (हदीस : तिर्मिज़ी)

मालूम हुआ कि परिवार वह कसौटी है जिसके द्वारा हम सरलतापूर्वक यह जान सकते हैं कि कोई व्यक्ति अपने चरित्र की दृष्टि से कैसा है।

पति-पत्नी के द्वारा एक परिवार का आविर्भाव होता है। परिवार में पत्नी के अतिरिक्त आदमी के अपने बच्चे भी शामिल होते हैं। परिवारों से मिलकर ही समाज का निर्माण होता है। परिवार वास्तव में सामाजिक भवन की वे बुनियादी ईंटें हैं जिनकी मज़बूती और दृढ़ता पर समाज की दृढ़ता निर्भर करती है।

परिवार में पत्नी का बड़ा महत्व होता है। पत्नी का क्या महत्व है? इसे जानने के लिए हम स्वयं स्त्री के विषय में कुछ बुनियादी बातें समझ लें।

स्त्री वास्तव में स्रष्टा का एक अनुपम कृत है। स्त्री को यदि ईश्वर ने रूप-रंग की दृष्टि से सुन्दरता प्रदान की है तो इसी के साथ उसे मृदुल एवं कोमल भावनाओं से सुसज्जित भी किया है। आन्तरिक रूप से स्त्री को जो सौन्दर्य प्रदान किया गया है, वह उसके बाह्य सौंदर्य से कुछ कम नहीं है। स्त्री का वास्तविक मूल्य उसके स्त्रैण-भाव में निहित है। स्त्रैण-भाव स्त्री की दुर्बलता नहीं बल्कि उसकी वास्तविक शक्ति है।

इस्लाम ने जीवन में स्त्री को आदर का जो स्थान दिया है, उस स्थान की वह वास्तव में पात्र भी थी। अपनी शिक्षाओं के माध्यम से इस्लाम ने स्त्री के शील-स्वभाव और उसके चरित्र की सुरक्षा की पूर्ण रूप से व्यवस्था की है। उसने लज्जा एवं पवित्रता को स्त्री का वास्तविक आभूषण ठहराया है। यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि ईश्वर के यहाँ स्त्री का भी वही दर्जा और स्थान है जो दर्जा और स्थान उसके यहाँ पुरुष को प्राप्त है। इस्लामी दृष्टिकोण से स्त्री यदि जीवन में पुरुष की सहचर है, तो पुरुष को भी जीवन में स्त्री का सहचर बनाया गया है। स्त्री और पुरुष दोनों का अस्तित्व परस्पर एक-दूसरे के व्यक्तित्व की परिपूर्णता के लिए अनिवार्य है। स्त्री न हो तो पुरुष के जीवन में एक ऐसी रिक्तता पैदा हो जाएगी जो किसी अन्य तरीक़े से दूर नहीं हो सकती। ठीक इसी तरह पुरुष के बिना स्त्री का जीवन भी अपूर्ण ही रहेगा। ईश्वर का हक़ अदा करने का मामला हो या अपने व्यक्तित्व की पूर्णता का। मुस्लिम स्त्री की ओर से हर कार्य में जिस नैतिकता और चरित्र की अभिव्यक्ति अभीष्ट है, उसके कारण मानव-जीवन में जो सौन्दर्य और आकर्षण प्रकट होता है, वह और कहीं दिखाई नहीं देता। स्त्री अपने पति के लिए सुख-शान्ति और ख़ुशियों का कारण होती है। एक आदर्श महिला यह भली-भाँति जानती है कि सन्तान हो या नातेदार या पड़ोस के लोग, इन सबके सिलसिले में उसकी क्या ज़िम्मेदारियाँ होती हैं और उन ज़िम्मेदारियों को वह किस प्रकार अदा कर सकती है। वह अपने परिवार और समाज के लिए मुसीबत नहीं, बल्कि सर्वथा ईश-अनुकम्पा सिद्ध होती है। स्त्री अपने अस्तित्व और आचरण से मानव-जीवन को वह सुन्दरता प्रदान करती है जो अपनी मिसाल आप होती है।

पुरुष की ज़िम्मेदारी यह होती है कि वह हर प्रकार की आपदाओं और ख़राबियों से उसकी रक्षा करे। और उसकी कोशिश यह हो कि उसका परिवार उन विशेषताओं से सुसज्जित हो जाए कि उसे एक आदर्श परिवार कहा जा सके। सच यह है कि आदर्श परिवारों के द्वारा ही किसी आदर्श समाज का सपना साकार हो सकता है।

अपने परिवार की तरफ़ से बेपरवाह होना किसी तरह भी सही नहीं है।

विशेष रूप से हमें अपने घरवालों के पारलौकिक जीवन को सफल देखने की कामना होनी चाहिए। सांसारिक जीवन की दुरुस्ती ही पर पारलौकिक जीवन की सफलता निर्भर करती है। क़ुरआन में है—

> "ऐ ईमान लानेवालो! अपने आपको और अपने घरवालों को उस आग से बचाओ जिसका ईंधन मनुष्य और पत्थर होंगे।" (क़ुरआन, 66:6)

क़ुरआन में ईमानवालों के लिए आदर्श के रूप में फ़िरऔन की पत्नी को पेश किया गया है कि किस तरह फ़िरऔन जैसे कठोर और ज़ालिम काफ़िर शासक के क़ब्ज़े में होने के बावजूद वह सत्यप्रियता और ईमान से जुड़ी रही तथा फ़िरऔन और उसके कर्मों से विरक्त रही और ईश्वर से प्रार्थना करती रही कि वह उसे फ़िरऔन के दुष्कर्मों के प्रभाव से बचाए, उसे अपनी कृपा से वंचित न रखे और फ़िरऔन से ही नहीं बल्कि हर अत्याचारी व्यक्ति की चालों से उसकी रक्षा करे। उसे परलोक (जन्नत) में अपने पास जगह प्रदान करे (क़ुरआन, 66:11)। फ़िरऔन की पत्नी के चरित्र को प्रस्तुत करने का उद्देश्य यह बताना है कि परिस्थिति चाहे कितनी भी गम्भीर और भयावह हो, आदमी को अपने को उच्च स्थान से गिरने नहीं देना चाहिए, क्योंकि उच्च स्थान से गिर जाने के पश्चात् आदमी के पास कोई चीज़ शेष नहीं रहती कि सत्य की दृष्टि में उसका कोई मूल्य हो।

हम अपने परिवार के प्रति अपने दायित्व का पूर्ण रूप से निर्वाह नहीं कर सकते। जब तक हम में ये तीन गुण न पाए जाते हों—

1. समर्पण
2. नर्म स्वभाव और विनम्रता
3. सेवा की भावना

सबसे पहली चीज़ समर्पण की भावना है। अपने परिवार के प्रति यदि कोई पूर्ण रूप से समर्पित नहीं है, बल्कि अपने और अपने परिवार के बीच किसी भी प्रकार की दूरी बनाए रखता है, तो वह उन ज़िम्मेदारियों को अदा करने में सदैव असमर्थ रहेगा जो ज़िम्मेदारियाँ परिवार के सम्बन्ध में उसपर

आती हैं। मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपने परिवार के साथ यथासम्भव आत्मीयता बनाए रखे। इसी रूप में वह अपने परिवार के प्रति अपने दायित्व का पूर्णतः निर्वाह कर सकता है। सच्ची बात यह है कि आत्मीयता के बिना उसे पारिवारिक जीवन का वास्तविक सुख और आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता। अपने परिवार के साथ आत्मिक सम्बन्ध के पश्चात् ही वह इसकी आशा कर सकता है कि दुनिया से उसके जाने के बाद भी उसका प्रभाव शेष रह सकता है और उसके संसार से प्रस्थान के पश्चात् भी उसके लोग उसके मिशन को विस्मृत नहीं कर सकते। वह मनुष्य ही क्या जिसके जीवन का कोई उच्च लक्ष्य और मिशन न हो, जिससे वह अपने परिवार को परिचित करा सके और परिवार के लोग उसके मिशन को जीवित रख सकें। क़ुरआन में है कि पैग़म्बर हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) ने संसार से प्रस्थान करते समय अपने बेटों से कहा था कि तुम मेरे बाद किसकी बन्दगी करोगे? जब बेटों ने कहा कि हम ईश्वर को विस्मृत नहीं कर सकते, हम उसी की बन्दगी करेंगे जो आपका प्रभु-पूज्य है और जो आपके पितामह हज़रत इबराहीम, इसमाईल और इसहाक़ (अलैहि॰) का परम पूज्य है। हमारा जीवन उसी की बंदगी में व्यतीत होगा। हम ईश्वर की अवज्ञा कदापि नहीं कर सकते, हम उसी के सहारे जी रहे हैं, भविष्य में भी वही हमारे जीवन का आधार होगा।

हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) का अपने बेटों से प्रश्न करना वास्तव में उनकी इस बात की वसीयत थी कि वे उनके बाद भी सत्य मार्ग पर चलते रहेंगे। यही वह वसीयत है जो हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) से पहले हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) अपनी सन्तान को कर चुके थे। (क़ुरआन, 2:131-133)

सन्तान अगर प्रशिक्षित हो तो व्यक्ति उसपर पूरा भरोसा कर सकता है कि उसके न रहने पर भी उसका मिशन जीवित रहेगा और जीवन का वास्तविक प्रकाश उसके बाद बुझ नहीं सकता।

अपने परिवार के सम्बन्ध में दूसरी बुनियादी चीज़ है– नर्म स्वभाव और विनम्रता। अपने परिवार के साथ अपना जो व्यवहार हो उसमें किसी प्रकार की सख़्ती और कटुता नहीं होनी चाहिए। नर्मी से चीज़ों में ख़ूबसूरती आती है और अनुचित कठोरता चीज़ों को बिगाड़कर रख देती है। जीवन को

सहज और प्रीतकर बनाने में विनम्रता का बड़ा हिस्सा होता है। यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि प्रसन्नचित्त का विशेष लक्षण विनम्रता ही है। यदि पारिवारिक जीवन में विनम्रता और करुणा का अभाव पाया जाता है तो इसका अर्थ इसके सिवा और कुछ न होगा कि अपने परिवार को सज्जनता एवं सभ्यता से सुसज्जित करने में हम असफल रहे।

जीवन के तथ्यों के प्रति सजग रहने की ज़रूरत होती है। जीवन में उस स्वभाव एवं व्यवहार को गृहण करने में संकोच नहीं होना चाहिए जो हमारी प्रकृति के अनुकूल हो और जिसके द्वारा मानवीय चेतना को विकसित होने का अवसर प्राप्त होता हो। बाल-बच्चों की शिक्षा-दीक्षा इस प्रकार होनी चाहिए कि वे लिखने-पढ़ने के साथ-साथ अपने अन्तःकरण से भी भली-भाँति परिचित हो सकें और वे उस गरिमा को जान सकें जो मनुष्य के लिए ईश्वर का विशिष्ट उपहार है।

परिवार के लिए तीसरी आवश्यक जो चीज़ है वह है सेवा की भावना। यूँ तो परिवार के प्रत्येक सदस्य में यह भावना पाई जानी चाहिए, किन्तु परिवार के अग्रगण अर्थात् माता-पिता, बड़े भाई और बड़ी बहन के अन्दर तो अनिवार्य रूप से यह भावना होनी चाहिए। सेवा की भावना में ऐसी शक्ति पाई जाती है जो परिवार को उन्नति के शिखर पर पहुँचा सकती है। सेवा की भावना एक ऐसा जादू है जिसके कारण परिवार में किसी प्रकार का कलह और असन्तोष जन्म नहीं ले सकता। सेवा-भाव के कारण परिवार के लोगों में परस्पर जो आत्मीयता विकसित होगी, वह अद्वितीय होगी। इसके फलस्वरूप परिवार के सभी सदस्य परस्पर ऐसे जुड़े हुए दिखाई देंगे, जैसे पुष्प की पंखड़ियाँ परस्पर एक-दूसरे से जुड़ी हुई होती हैं।

याद रहे, स्वार्थपरता कभी भी सेवा की भावना की प्रेरक नहीं बन सकती। इसका प्रेरक तो प्रेम या आत्मीयता ही हो सकती है। यहाँ इसका भी ध्यान रहे कि प्रेम अपना साध्य स्वयं होता है, उसे मात्र साधन समझना बड़ी भूल होगी।

❖ ❖ ❖

16

समाज

(1) आत्मीयता

(2) त्याग

(3) शुभेच्छा

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज ही में वह जन्म लेता, पलता-बढ़ता और जवान होता है। यह स्वाभाविक है कि जिस प्रकार का समाज होगा उसमें उसी प्रकार के लोग पैदा होंगे जो विचार और व्यवहार की दृष्टि से उस समाज के अंग हो सकें। चूँकि आदमी के बनने और बिगड़ने में उस समाज का बड़ा हाथ होता है जिसमें वह पैदा होता और साँस लेता है, इसलिए एक अच्छे और आदर्श समाज की आवश्यकता को हर व्यक्ति महसूस करता है। परन्तु प्रश्न यह है कि एक आदर्श समाज (Ideal society) हम किसे कह सकते हैं! शायद कोई व्यक्ति इसका इनकार न कर सके कि आदर्श समाज वही हो सकता है जिसमें विचार और कर्म की दृष्टि से आगे बढ़ने और तरक़्क़ी करने का अधिकार हर व्यक्ति को प्राप्त हो, कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति की उन्नति की राह में रुकावट न बन सके। यह उसी समय सम्भव हो सकता है जबकि समाज में समाजिक न्याय की धारणा स्पष्ट रूप से पाई जाती हो और हर व्यक्ति उसका आदर करता हो। उदाहरणार्थ हर व्यक्ति का यह हक़ है कि जीवन के प्रति जिस धारणा को वह सत्य समझता हो उसे वह सहर्ष अपना सके, बल्कि उसे यह अधिकार भी प्राप्त हो कि जिस चीज़ में वह अपनी और सारे मानवों की भलाई समझता हो उसके प्रचार-प्रसार की भी उसे आज़ादी हो। आजीविकोपार्जन के लिए जाइज़ रास्ते सभी के लिए खुले हों, अपनी आर्थिक स्थिति को संभालने के लिए हर व्यक्ति वैध तरीक़ा अपना सकता हो, बल्कि आदर्श समाज तो वह है जिसमें केवल यही नहीं कि हरेक को आर्थिक क्षेत्र में प्रयास करने का अधिकार प्राप्त हो, बल्कि

समाज के लोग और समाज के समस्त वर्ग आर्थिक संघर्ष में एक-दूसरे के सहायक बनकर रहें और सभी एक-दूसरे को आगे बढ़ने में सहायक हों। समाज का कोई वर्ग यदि आर्थिक दृष्टि से परेशानियों का शिकार है तो इससे पूरा समाज प्रभावित होगा और समाज के एक वर्ग में स्वभावतः एक असन्तोष जन्म लेगा जिसका परिणाम अच्छा नहीं होगा।

जोड (Joad) ने लिखा है कि आदर्श समाज वह है जिसमें हर व्यक्ति उस काम के करने का इच्छुक हो जिसे वह हक़ समझता है, और हर व्यक्ति हक़ (सत्य) उसी को समझे जो वास्तव में हक़ हो। हक़ वही हो सकता है जिसके अच्छे परिणाम सामने आते हैं। जो स्थायी मूल्यों, सौंदर्य, सत्य, नैतिक गुण और प्रफुल्लता के प्रतीक हों। जिस समाज के लोग इन मूल्यों को अधिक से अधिक महत्व देंगे और इन्हें व्यवहार में लाएँगे वह समाज उत्तम समाज कहलाने का अधिकारी है।

जोड जिस आदर्श समाज की बात कर रहा है, उसके लिए ज़रूरी है कि लोगों की भावनाओं में समानता और एकरूपता पैदा करने की कोशिश की जाए और इस बात की कोशिश की जाए कि समाज के लोग एक उच्च जीवन-लक्ष्य से परिचित हों और उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए एक-दूसरे के साथ मिलकर काम करें। ब्राइटमैन (Brightman) की दृष्टि में इस प्रकार के जीवन-उद्देश्य की बुनियादें ईश्वरीय धारणा पर सुदृढ़ होंगी।

फिर इसके लिए यह भी आवश्यक है कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति में त्याग और सेवा की भावना एक-दूसरे से बढ़कर पाई जाती हो। समाज के प्रत्येक व्यक्ति को एक-दूसरे की उन्नति और विकास की चिन्ता हो और इसी को वह अपने लिए लाभकारी समझे। समाज के लोग साधारणतया एक जैसे नहीं होते, उनके विचारों में भी समानता नहीं पाई जाती, इसी लिए गुरूजीफ़ का मत है कि मानवता का विकास और उसकी उन्नति एक विशिष्ट गरोह के माध्यम ही से सम्भव हो सकती है। यही गरोह शेष मानवों पर प्रभाव डालेगा और उनका पथ-प्रदर्शन करेगा।

लेकिन यह महान कार्य बड़ी क़ुरबानी चाहता है। यह कार्य उसी समय सम्पन्न हो सकता है, जब आदमी अपने ही हित में घिरकर न रह जाए बल्कि

इससे आगे वह मानवजाति से प्रेम करता रहे। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार एक माँ अपनी इच्छाओं और कामनाओं को अपने बच्चों के पालन-पोषण की ओर मोड़ देती है। इस अवसर पर व्हाइट हेड (White Head) की बात याद आती है। वह कहता है कि इस सच्चाई को समझ लेने की आवश्यकता है कि जीवन की परिपूर्णता का रहस्य उन उद्देश्यों की प्राप्ति में होता है जो निजत्व से परे होते हैं।

समाज के विकास और उन्नति के लिए वास्तव में वही कार्य कर सकता है, जिसका संबंध समाज से आत्मीयता का हो। समाज से बेगानगी और दूरी और उसके हितों की उपेक्षा के साथ कोई भी सामाजिक कर्तव्यों को पूरा नहीं कर सकता। जिस समाज के हम पैदाइशी तौर पर ऋणी हैं और जिसके प्रति हमारी बहुत-सी ज़िम्मेदारियाँ हैं हमारा कर्तव्य है कि हम अपने समाज को उच्च से उच्च विचारों से परिचित कराएँ और समाज के लोगों को विचार और चरित्र की दृष्टि से ऊँचा उठाने का प्रयास करें। इसके लिए बड़ी सहन-शीलता और दूरदर्शिता अपेक्षित है। इस सिलसिले में पैग़म्बरों की कोशिशों और प्रयास में हमारे लिए मार्गदर्शन पाया जाता है। पैग़म्बरों ने जिस समाज में भी अपना कार्य शुरू किया, उस समाज को बुरे परिणामों से बचाने की उन्होंने पूरी काशिश की। समाज में पाई जानेवाली बुराइयाँ उनकी निगाह में थीं वे उन बुराइयों को दूर करने के लिए भी प्रयत्नशील रहे। उनका विशेष लक्ष्य यह रहा है कि उस सत्य से भी परिचित हो सकें और उसका रसास्वादन कर सकें, जिसका ज्ञान ईश्वर ने उन्हें प्रदान किया था। और जिससे लोगों को अवगत कराना उनकी पैग़म्बराना ज़िम्मेदारी भी थी।

समाज-सेवा का कार्य वही लोग कर सकते हैं जो त्याग और क़ुरबानी में बढ़े हुए हों। इतिहास भी इसी का साक्षी है कि समाज के लिए कोई बड़ा महत्वपूर्ण कार्य उन ही लोगों ने किया है, जिन्होंने हर प्रकार की क़ुरबानियाँ दीं और जो मुसीबतें भी उन्हें पेश आईं उनकी उन्होंने कोई परवाह न की। कोई भी परेशानी और संकट उन्हें उनके कार्य से रोक न सका। यह त्याग सम्भव न था यदि समाज से उनका सम्बन्ध आत्मीयता का न होता।

एक और चीज़ इस सिलसिले में हमें याद रखनी चाहिए, और वह है

शुभेच्छा की वह भावना जो समाज के प्रति हमारे दिल में होनी चाहिए यदि समाज के साथ आत्मीयता का सम्बन्ध पाया जाता है तो शुभेच्छा की भावना सदैव बलवंती रहेगी। यही भावना मनुष्य को सदैव समाज सेवा में अग्रसर रखेगी और वह कभी भी अपने उन कर्तव्यों के प्रति उदासीन नहीं हो सकता, जो कर्तव्य समाज के प्रति उसके होते हैं।

यह बात भी समझ लेने की है कि समाज वह दर्पण है, जिसके द्वारा लोगों के गुण और अवगुण जनसामान्य के सामने आते रहते हैं। इस दर्पण में हम किसी समय भी अपना चेहरा देख सकते हैं। समाज के प्रति सजगता स्वयं हमारे चरित्र की परिचायक है। इसके विपरीत यदि हमें अपनी ज़िम्मेदारियों का ख़याल नहीं है, तो इसका अर्थ यह होता है कि या तो समाज के प्रति हमें अपने दायित्व का ज्ञान नहीं, या फिर हमारे अन्दर साहस और संकल्प की शक्ति नहीं पाई जाती, और ये दोनों ही बातें शोचनीच हैं।

उपरोक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि समाज के प्रति ये तीन चीज़ें अनिवार्य हैं—

1. आत्मीयता
2. त्याग
3. शुभेच्छा

❖❖❖

17

सम्पर्क

(1) परिचय मात्र

(2) सहयोग

(3) सान्निध्य एवं विलीनता

किसी के सम्पर्क में आना या किसी के साथ सम्पर्क स्थापित करना जीवन का एक विशेष नियम है। इस नियम की उपेक्षा सम्भव नहीं है। प्रश्न केवल यह है कि जीवन में वह अपना सम्पर्क किस से स्थापित करता है या वे कौन हैं जो उसके सम्पर्क में आते हैं। फिर सम्पर्क के भी कई दर्जे होते हैं। मनुष्य के लिए सफलता की बात यह है कि वह सम्पर्क के मामले में सतर्कता से काम लेता है या नहीं। कहीं ऐसा न हो कि वह अपने जीवन में हर चीज़ से तो सम्बन्ध या सम्पर्क स्थापित करे, किन्तु जिससे वास्तव में उसे सम्पर्क स्थापित करना चाहिए, उसी से उसका सम्पर्क स्थापित न हो सके और जीवन की उसकी साधना अधूरी की अधूरी रह जाए। उसे अपने सफल होने का भ्रम हो सकता है और अज्ञानी भी उसे एक सफल व्यक्ति समझ सकते हैं, किन्तु सत्य की दृष्टि में उसे कदापि सफल नहीं कहा जा सकता।

सम्पर्क के मूलतः तीन तल होते हैं–

1. परिचय मात्र

किसी चीज़ के सम्पर्क में आने का अर्थ कभी-कभी परिचयमात्र होता है। उदाहरणार्थ, हमने किसी वस्तु के बारे में सुन लिया है कि वह अमुक स्थान पर पाई जाती है और वह अमुक काम में आती है। इससे अधिक उससे हमारा कोई सम्पर्क नहीं होता। हमने सुना कि मधुमक्खियाँ फूलों का रस चूसती और उससें मधु तैयार करती हैं और यह बहुत ही लाभदायक होता है, उसे खाते भी हैं और औषधि में भी उसका प्रयोग होता है। किन्तु न तो हमने मधु को देखा और न कभी उसे चख सके तो उससे हमारा यह सम्पर्क

मात्र सूचना या परिचय का होगा।

इसी तरह हमें मालूम हुआ कि जगत् का कोई स्रष्टा है और यह जीवन उसी की अनुकम्पा है। अनुकम्पा के रूप में उसकी झलक देखी जा सकती है। इस जीवन का उसने एक लक्ष्य निर्धारित किया है। जीवन का लक्ष्य उसके सम्पर्क में आकर ही पूरा हो सकता है। किसी व्यक्ति के लिए यह केवल एक सूचना और दूर का परिचय है। वह कह सकता है कि मैंने सुना है कि जगत् का स्रष्टा एक ईश्वर है, इस जीवन के प्रति उसकी कोई योजना भी है और उसी योजना को पूरी करने के लिए उसने इस जगत् का निर्माण भी किया है। इससे अधिक यदि वह कुछ नहीं जानना चाहता है और इस सम्बन्ध वह कोई कामना भी नहीं रखता है तो इस प्रकार का सम्पर्क नाम मात्र का सम्पर्क होता है। इस सम्पर्क का न तो मनुष्य के जीवन पर कोई प्रभाव पड़ता है और न उसके जीवन में कोई गुणात्मक परिवर्तन आता है। मीठे फलों के बारे में परिचय मात्र से न हम फलों का स्वाद ले सकते हैं और न यह हमारे लिए स्वास्थ्यवर्धक हो सकता है। यह मात्र एक सामान्य ज्ञान (General Knowledge) होगा। इसी प्रकार दूसरी बहुत-सी जानकारियाँ हम रखते हैं किन्तु उनकी कोई उपयोगिता हमारे जीवन में नहीं होती।

2. सहयोग

दूसरे प्रकार का सम्पर्क वह है जिसे हम सहयोग कह सकते हैं। जैसे किसी कार्य को पूरा करने में यदि किसी व्यक्ति समक्ष कोई योजना है तो उसे क्रियान्वित करने में हम उसका साथ दें। किन्तु इसके लिए ज़रूरी है कि हमें योजक और योजना का पूर्ण ज्ञान हो, हम उस योजना और योजक के समक्ष जो उद्देश्य है उससे पूर्ण सहमत भी हों।

क़ुरआन से ज्ञात होता है कि ईश्वर ने हमें यह जीवन एक महान योजना के अन्तर्गत प्रदान किया है।.हमारे जीवन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है जो महान भी है और मधुर भी। जीवन उसके द्वारा अपने वास्तविक अर्थ को पा लेता है। जीवन में उसके बिना अर्थवत्ता नहीं आ सकती। जीवन के सौंदर्य और उसकी अर्थपूर्णता को बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि हम उसे अपने जीवन में श्वास की तरह समझें, जिस प्रकार जीवित रहने के लिए श्वास लेना अनिवार्य है, ठीक उसी तरह जीवन की अर्थवत्ता को बनाए रखने

के लिए अनिवार्य है कि हम जीवन के वास्तविक उद्देश्य से जुड़े रहें। क्योंकि इसके अभाव का् अर्थ हमारी आध्यात्मिक मृत्यु है।

क़ुरआन में स्पष्टतः कहा गया है कि ईश्वर के समक्ष हमारे जीवन की परिपूर्णता है। इस परिपूर्णता को प्राप्त करने के लिए हमें इस जीवन में अपना हिस्सा अदा करना होगा। इस सिलसिले में ईश्वर ने हमारे मार्गदर्शन की पूरी व्यंवस्था की है। जब हम इस उद्देश्य को प्राप्त करने में ईश्वर के साथ सहयोग करते हैं, उसके विरुद्ध कोई मार्ग नहीं अपनाते, तो ईश्वर के साथ हमारा जो सम्पर्क स्थापित होता है, वह सहयोग का सम्पर्क होता है और जब यह सहयोग जीवन में निरन्तर बना रहता है तो ईश्वर का भी हमें पूर्णतः संग-साथ प्राप्त हो जाता है।

यदि हम ईश्वर के साथ सहयोग करने में सफल हो जाते हैं तो इस सम्पर्क में स्वभावतः ऐसी गहराई और गुणवत्ता आ जाती है और इसमें ऐसे सौंदर्य और माधुर्य का आविर्भाव हो जाता है जिसको शब्दों में व्यक्त करना असम्भव है। हमारा सारा शब्द-ज्ञान उसे व्यक्त करने में असमर्थ दिखाई देता है। सम्पर्क की यह स्थिति वह है जिसे हम विलीनता और सान्निध्य का सम्पर्क कह सकते हैं।

3. सान्निध्य एवं विलीनता

तीसरे प्रकार के इस सम्पर्क अर्थात् विलीनता और सान्निध्य की स्थिति ही में हम पूर्णकाम होते हैं। यही विलीनता इस बात की द्योतक होती है कि हमारी साधना पूरी हुई। हमने उस चीज़ को पा लिया जो जीवन में पाने की थी और हमारे जीवन में वह घटना घटित हो गई, जिसकी जीवन को प्रतीक्षा थी। अब हममें और हमारे इश्क़ में कोई दूरी शेष नहीं रही। जीवन में यह विलीनता या तल्लीनता अपने में वह सब कुछ समेट लेती है जो जीवन की मूल सम्पदा है। इस विलीनता के विषय में बस इतना कह सकते हैं कि यह अपने में एक मौन दशा लिए होती है। कुछ लोग इसे 'ध्यान' से अभिव्यंजित करते हैं और कुछ लोग इसे 'समाधि' के नाम से जानते हैं। इससे जीवन में जो व्यर्थ होता है वह अपने आप विदा हो जाता है।

❖❖❖

18

परेशानियों के मूल कारण

(1) हमने इसी संसार को सब कुछ समझ लिया,
(2) हम शरीर ही के आस-पास जीते हैं, तथा
(3) हमने दूसरों को ग़ैर समझ लिया।

आज हर व्यक्ति परेशान दिखाई देता है। वह सन्तुष्ट नहीं है। उसका सारा समय एक प्रकार के तनाव में बीत जाता है। परितोष की कोई सूरत दिखाई नहीं देती। ऐसा लगता है जैसे उसकी कोई बहुमूल्य वस्तु खो गई है और वह उसके लिए परेशान है, या जैसे वह किसी ऐसी चीज़ को पाना चाहता है जिसके उपलब्ध होने की कोई सूरत दिखाई नहीं देती। वह धन या पद पाने के लिए दौड़ लगाता है और चाहता है कि वह दूसरों से आगे निकल जाए। इसमें कभी वह बड़ी हद तक सफल भी हो जाता है। वह बहुत-सा धन बटोर लेता है। सम्पत्ति और जायदाद बना लेता है। उसके बहुत से नौकर और सेवक भी हो जाते हैं। उसके जीवन में प्रत्यक्षतः किसी चीज़ की कमी दिखाई नहीं देती, किन्तु फिर भी उसकी परेशानी नहीं जाती। वह अधीर का अधीर ही रहता है।

कभी ऐसा भी होता है कि आदमी कोई ऐसा काम कर जाता है, (जैसे किसी ने कोई आविष्कार कर दिया) जिससे उसे एक बड़ी शोहरत मिल जाती है। दूर-दूर तक लोग उसे जानने लगते हैं और समझते हैं कि वह जीवन में सफल है। लोग उसकी मिसालें देने लगते हैं और कहते हैं कि उसका कृत्य ऐसा है कि उसको भुलाया नहीं जा सकता। समाचार-पत्रों में उसकी चर्चाएँ होने लगती हैं। उसके साथ लोग अपना चित्र खिंचवाना चाहते हैं और उसके सम्पर्क में आने को अपने लिए गर्व का विषय मानते हैं। किन्तु जब हम व्यक्ति विशेष को निकट से देखते हैं तो वह भी हमें परेशान दिखाई देता है। सब कुछ होते हुए भी वह अतृप्त ही मालूम होता है। उसकी खुशियों

में कोई गहराई नहीं पाई जाती। उसके पास शिकायतों की एक लम्बी सूची होती है। लगता है कि ख़ुशियों को बटोरने के अनथक प्रयास एवं परिश्रम के पश्चात् भी अभी तक उसे वह ख़ुशी मिल नहीं सकी कि वह अहो भाव से भर जाए और वह कह सके कि हमें वह सब कुछ मिल गया जो हम चाहते थे, बल्कि अपनी इच्छा से बढ़कर हमें वह सब कुछ प्राप्त है जिसकी कोई कामना कर सकता है। वह ज़िन्दगी भर दौड़ता रहता है। उसकी दौड़ कभी समाप्त नहीं होती। लेकिन उसकी मंज़िल उसे दिखाई नहीं देती। ऐसा प्रतीत होता है कि वह मंज़िल से उतना ही दूर अब भी है, जितना दूर उस समय था जब उसने ज़िन्दगी के मैदान में क़दम रखा था।

मनुष्य की परेशानियों और उसकी विक्षिप्तताओं के मूल कारण को साधारणतया लोग नहीं जानते। इसलिए उनके प्रयासों से परेशानियाँ कुछ कम क्या होतीं; कुछ बढ़ ही जाती हैं। धन-दौलन और किसी पद को प्राप्त करने के लिए जीवन में मनुष्य की क्रियाशीलता से उसकी सांसारिक आवश्यकताएँ तो निश्चय ही पूरी हो जाती हैं, किन्तु मनुष्य की कुछ अपेक्षाएँ ऐसी भी हैं जो भौतिक नहीं हैं। जब तक हम उन अलौकिक या आत्मिक आवश्यकताओं को नहीं जान लेते हम उनके लिए कभी प्रयास भी नहीं कर सकते।

हमारी परेशानी और विपदाओं के मूल कारणों में से एक कारण यह भी है कि हम वर्तमान संसार और लौकिक जीवन ही को सब कुछ समझ लेने की ग़लती करते हैं। वर्तमान जीवन और इस जीवन के साज़ो-सामान हमें समृद्ध नहीं कर सकते। एक तो यहाँ हमारी सारी भौतिक आवश्यकताएँ पूरी हो सकें, यह ज़रूरी नहीं है। दूसरे, भौतिक सम्पदा की दृष्टि से सब समान नहीं हो सकते। कोई व्यक्ति अरबपति है, कोई आर्थिक दृष्टि से मध्यवर्ग का और कोई निर्धन तथा दूसरों की सहायता पर निर्भर है। इसलिए जब तक मनुष्य कम मिलने पर भी सन्तुष्ट होने की कल्पना नहीं जानता, उसकी परेशानी नहीं जा सकती। वास्तव में यहाँ बहुत कुछ पा लेने के बाद भी और अधिक पा लेने की भूख मिटती दिखाई नहीं देती। जब तक कि आदमी की दृष्टि में वह सब कुछ न हो जिसके देने का वादा परमात्मा ने उससे किया

है, अर्थात् शाश्वत जीवन और उस अमर जीवन का वैभव, ऐसी स्थिति में यदि आदमी की मौलिक आवश्यकताएँ पूरी हो रही हों तो इसे अपने लिए पर्याप्त समझना चाहिए, क्योंकि जीवन का उद्देश्य धन इकट्ठा करना नहीं हो सकता। जीवन यहाँ के धन-वैभव से कहीं अधिक मूल्यवान है। अतः जीवन की वास्तविक उपलब्धि कुछ और ही होगी, और वह है अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान। मनुष्य का जब अपने वास्तविक रूप से परिचय हो जाता है तो यह परिचय स्वयं उसे इतना समृद्ध बना देता है कि उससे बढ़कर किसी समृद्धता की हम कल्पना नहीं कर सकते। मनुष्य अपने आप में समृद्ध है, लेकिन उसे इसका पता नहीं। जिसके कारण वह अपने आपको निर्धन समझता है और अपनी निर्धनता को दूर करने के लिए हाथ-पैर मारता रहता है, लेकिन इसके लिए उसका प्रयास भौतिक सम्पदा को एकत्र करने के सिवा और कुछ नहीं होता किन्तु इससे उसकी परेशानी दूर नहीं होती। हाँ, यह तो हो सकता है कि दूसरों के मुक़ाबले में वह धनवान हो जाए और वह धोखे में पड़ जाए और अपने को सफल व्यक्ति समझने लग जाए, किन्तु यह केवल धोखा होता है और देर तक कोई अपने आपको धोखा नहीं दे सकता। मात्र धन और पद से जीवन की दरिद्रता दूर नहीं होती। धन-दौलत और पद के साथ आपदाएँ लगी होती हैं। व्यापार में घाटा भी हो सकता है। आदमी को पद से हटना भी पड़ता है। यहाँ आशा के साथ निराशा, सफलता के साथ असफलता की आशंका बनी रहती है।

हमारी परेशानियों का एक मूल कारण यह भी है कि सामान्यतः हम शरीर ही के आस-पास जीते हैं। शरीर से अधिक अपने को कुछ और अधिक नहीं समझते। हम केवल सांसारिक सुख-सुविधा से परिचित होते हैं, उसी से अपना तादात्म्य (Identity) स्थापित कर लेते हैं और शारीरिक कष्ट को ही कष्ट और शारीरिक सुख को ही सुख जानने लगते हैं। हम नहीं जानते कि वास्तव में हम शरीर नहीं हैं बल्कि हमारा अस्तित्व वास्तव में अशारीरिक है जिसकी सम्भावनाओं की कोई सीमा नहीं है, और उन उपलब्धियों का मुक़ाबला दुनिया की कोई उपलब्धि नहीं कर सकती, जो उपलब्धियाँ हमें आत्मा के माध्यम से प्राप्त हो सकती हैं। आत्मिक अनुभवों और आत्मिक

शान्ति और सुबास से लोग वंचित रह जाते हैं, जिससे उनका जीवन केवल शरीर के आसपास ही रह जाता है। वे जीवनभर जीवन की सम्भावनाओं से अपरिचित रहते हैं।

हमारी परेशानियों और दुखों का एक विशेष कारण यह भी है कि हमारा दृष्टिकोण अत्यन्त संकुचित होता है। हम मनुष्यों में से किसी को अपना और किसी को ग़ैर समझने की ग़लती करते हैं। हम यह नहीं सोचते कि जब सारे मनुष्यों को ईश्वर ने पैदा किया है और सबको इसका अधिकार प्राप्त है कि वे ईश्वर के प्रिय बन सकें तो फिर इसका औचित्य कहाँ रह जाता है कि हम सारे मनुष्यों को एक दृष्टि से न देखें और अपने परिजनों के अतिरिक्त सबको अपना प्रतिद्वन्द्वी या बैरी समझने लगें। शत्रु तो शत्रु, किसी को ग़ैर समझना भी हिंसात्मक दृष्टिकोण है। अपने सिवा सबको ग़ैर समझने की भूल ही के कारण ईर्ष्या, क्रोध, लोभ आदि रोग हमें घेर लेते हैं और हम अपने ही नहीं, बल्कि दूसरों के सुख-चैन के दुश्मन बन जाते हैं। हमारी दृष्टि के स्वस्थ होने की एक बड़ी पहचान यही हो सकती है कि हमारा हृदय इतना विशाल हो कि जिसमें सबके लिए सम्मान और प्यार हो. दूसरों की खुशियाँ हमें खुश कर जाएँ और दूसरों की पीड़ाओं से हम दुखी हों।

❖❖❖

19

अल्लाह का 'ज़िक्र'

(1) ज़िक्र का महत्व
(2) ज़िक्र का सम्बन्ध इबादत से
(3) सारे कर्मों की मूल आत्मा

अल्लाह की याद और उसका 'ज़िक्र' वास्तव में 'इस्लाम' का मूल आधार है। इसके बिना मनुष्य को वह जीवन प्राप्त ही नहीं होता जो इस्लाम को अभीष्ट है। अल्लाह का स्मरण और उसका ख़याल ज्ञान ही है जो मानव-जीवन को स्थायी रूप से अल्लाह और उसकी बन्दगी के साथ जोड़े रखता है। जिस प्रकार शारीरिक अस्तित्व के लिए आवश्यक है कि साँस लेने की क्रिया का क्रम निरन्तर चलता रहे, ठीक उसी प्रकार हमारे नैतिक और आध्यात्मिक अस्तित्व के लिए आवश्यक है कि हम हर क्षण अल्लाह की ओर प्रवृत्त रहें। हमारी जिह्वा सदैव उसके नाम से पावन होती रहे। अल्लाह का ख़याल मन में कुछ इस तरह बस जाए कि वह हमारी चेतना से आगे अचेतना और अचेतन मन तक में उतर जाए। और फिर हमारी गतिविधि, हमारी चाल-ढाल, हमारी बातचीत और हमारी ख़ामोशी, तात्पर्य यह है कि हमारी हर चीज़ से इस बात का संकेत हो कि हम एक अल्लाह के बन्दे और उसके ग़ुलाम हैं। उसकी महानता का एहसास हमें ग़ाफ़िल और बेपरवाह होने से रोके रखे और उसकी ख़ुशी पाने की कामना हर क्षण हमें इस बात का जिज्ञासु बनाए रखे कि किस प्रकार से हम अधिक-से-अधिक अच्छे कर्म कर सकते हैं। हम कोई अच्छा काम करें तो हम अल्लाह के आभारी हों और कृतज्ञता दिखलाएँ।

दुख और संकट के समय हम उसकी दयालुता के अभिलाषी हों। हर मुसीबत के समय उसी की ओर रुजू करें, गुनाह और बुराई का कोई मौक़ा सामने आए तो हम अल्लाह से डर जाएँ। हमसे कोई अपराध हो जाए तो

तुरन्त उससे क्षमा चाहें। हर आवश्यकता और ज़रूरत के समय उससे दुआ माँगे। हर काम अल्लाह के नाम से करें। खाना खाएँ तो अल्लाह का नाम लेकर खाएँ, सोने जाएँ तो अल्लाह को याद करके सोएँ, सोकर उठें तो अल्लाह का नाम लेते हुए उठें। साधारण अवस्था में भी किसी-न-किसी बहाने से अल्लाह का नाम ज़बान पर आता रहे। यही वास्तव में इस्लामी ज़िन्दगी की जान है।

इस्लामी जीवन की माँग यह है कि अल्लाह की याद आदमी की रग-रग में रच-बस गई हो। इस चिर-स्मरण के बिना हमारी वे इबादतें और उपासनाएँ भी जो विशेष समय में अदा की जाती हैं कोई विशेष प्रभाव नहीं दिखा सकतीं। इसलिए क़ुरआन में केवल 'ज़िक्र' की नहीं बल्कि 'ज़िक्रे-कसीर' (अधिक स्मरण) की ताकीद की गई है। कहा गया है :

"ऐ ईमान लानेवालो! अल्लाह को अधिक याद करो।"

(क़ुरआन, 33:41)

एक दूसरी जगह कहा :

"और अल्लाह को बहुत ज़्यादा याद करते रहो ताकि तुम सफल हो।" (क़ुरआन, 62:10)

अल्लाह के 'ज़िक्र' के इसी महत्व के कारण पूरे 'दीन' (धर्म) को 'ज़िक्रे-रब' कहा गया। क़ुरआन में है :

"और यह कि यदि वे मार्ग पर ठीक-ठीक लग जाते तो हम उन्हें भली-भाँति जल सम्पन्न कर देते ताकि हम उसमें उनकी परीक्षा लें, और जो कोई अपने 'रब' के 'ज़िक्र' से मुँह मोड़ेगा तो वह उसे यातना में चढ़ाता चला जाएगा।"

(72, 16:17)

'ज़िक्र' के इसी महत्व के कारण क़ुरआन में 'ईमानवालों' को हुक्म दिया गया है कि वे अल्लाह को याद करते रहें :

"और अपने 'रब' को प्रातः काल और संध्या समय याद करते रहो, अपने जी में गिड़-गिड़ाते और डरते हुए और

> धीमी आवाज़ के साथ, और उन लोगों में से न हो जाओ जो ग़ाफ़िल हैं।" (7:205)

अल्लाह के 'ज़िक्र' से ग़ाफ़िल होने को हानि एवं घाटे का कारण बताया गया :

> "ऐ ईमानवालो! तुम्हारे माल तुम्हें अल्लाह की याद से ग़ाफ़िल न करें और न तुम्हारी औलाद। और जो कोई ऐसा करेगा, तो ऐसे ही लोग घाटा उठानेवाले हैं।"
>
> (क़ुरआन 63/9)

ईमानवालों के गुणों का उल्लेख करते हुए कहा गया :

> "और अल्लाह का बहुत अधिक 'ज़िक्र' करनेवाले पुरुष और बहुत अधिक ज़िक्र करनेवाली स्त्रियाँ, अल्लाह ने उनके लिए क्षमा और बड़ा प्रतिदान तैयार कर रखा है।"
>
> (क़ुरआन, 33:35)

कहा गया कि जो बन्दे मुझको याद करेंगे, मैं भी उनको याद रखूँगा :

> "(मेरे बन्दो!) मुझे याद करो, मैं तुमको याद करूँगा और मेरे कृतज्ञ बनो और अकृतज्ञता न दिखाओ।"
>
> (क़ुरआन, 2:152)

'ज़िक्र' को हृदय-परितोष का कारण बताया गया और बताया गया कि जो ईमानवाले हैं उनकी आत्मा को अल्लाह के 'ज़िक्र' से ही शांति और सन्तुष्टि प्राप्त होती है।

> "ये वे लोग हैं जो 'ईमान' लाए और जिनके दिलों को अल्लाह के 'ज़िक्र' से इत्मीनान हासिल होता है। सुन रखो! अल्लाह की याद से ही दिलों को शान्ति मिलती है।"
>
> (क़ुरआन, 13:28)

'इबादत' से निवृत्ति के पश्चात् विशेष रूप से अल्लाह के 'ज़िक्र' की ताकीद की गई। इसमें इस बात की ओर संकेत है कि अल्लाह का 'ज़िक्र' एक ऐसी 'इबादत' है जिससे किसी भी दशा में निवृत्ति या अवकाश अपेक्षित

नहीं। यह 'इबादत' हर समय जारी रहनी चाहिए :

> "जब तुम 'नमाज़' अदा कर लो तो अल्लाह का 'ज़िक्र' करो (हर दशा में) खड़े, बैठे और अपने पहलुओं के बल लेटे।" (क़ुरआन, 4:103)

'जुमुआ' की नमाज़ के बारे मे कहा गया :

> "फिर जब (जुमआ की) नमाज़ समाप्त हो जाए तो धरती में फैल जाओ और अल्लाह का फ़ज़्ल (रोज़ी) तलाश करो, और अल्लाह को अधिक याद करो ताकि तुम सफल हो जाओ।" (क़ुरआन, 62:10)

क़ुरआन की कतिपय आयतों से ज्ञात होता है कि ऊँचे-से-ऊँचे कर्म और इबादतों का मूल तत्व और अभिप्राय अल्लाह का 'ज़िक्र' और उसकी याद ही है। उदाहरणार्थ नमाज़ के बारे में कहा :

> "मेरी याद के लिए नमाज़ क़ायम करो।"
>
> (क़ुरआन, 20:14)

'हज' सम्बन्धी इबादतों और कर्मों के बारे में नबी (सल्ल॰) कहते हैं :

> "अल्लाह के घर (काबा) का 'तवाफ़' और सफ़ा और मरवा के बीच 'सई' और जमरात की रमी, ये सब चीज़ें अल्लाह के 'ज़िक्र' के लिए निश्चित हुई हैं।"
>
> (हदीस : अबू-दाऊद, तिर्मिज़ी)

सूझ-बूझ रखनेवालों के बारे में बताया गया कि उनका सोच-विचार अल्लाह की याद से ख़ाली नहीं होता। वे किसी दशा में अल्लाह से ग़ाफ़िल नहीं होते, ब्रह्माण्ड की प्रत्येक वस्तु उन्हें अल्लाह की महानता और उसके न्याय की याद दिलाती रहती है :

> "निस्सन्देह आकाशों और धरती की बनावट में और रात-दिन के एक-दूसरे के बाद बारी-बारी से आने में बुद्धि रखनेवालों के लिए निशानियाँ हैं। वे (बुद्धि रखनेवाले) जो खड़े, बैठे और लेटे (प्रत्येक दशा में) अल्लाह को याद करते हैं और आकाशों और धरती की बनावट में सोच-विचार

करते हैं, (और कहते हैं) : हमारे रब! तूने ये सब व्यर्थ नहीं बनाया है। महिमा हो तेरी! तो (ऐ रब!) तू हमें आग (जहन्नम) की यातना से बचा ले।"

(क़ुरआन, 3:190-191)

अल्लाह का 'ज़िक्र' और उसकी याद सारे कर्मों की जान है, इसके बिना सारे आमाल (कर्म) बेजान हो जाते हैं। इसी बात को एक 'हदीस' में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—

"मुआज़-बिन-अनस जुहनी कहते हैं कि एक व्यक्ति ने नबी (सल्ल०) से पूछा कि ऐ अल्लाह के रसूल! जिहाद करने वालों में सबसे बढ़कर बदला पानेवाला कौन है? आप (सल्ल०) ने कहा : जो उनमें सबसे ज़्यादा अल्लाह को याद करनेवाला है। उसने कहा : रोज़ा रखनेवालों में सबसे ज़्यादा बदला पानेवाला कौन है? कहा : जो उनमें सबसे अधिक अल्लाह को याद करनेवाला है। फिर उस व्यक्ति ने इसी प्रकार नमाज़, हज और सदक़ा अदा करनेवालों के बारे में पूछा और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने हर एक का यही उत्तर दिया कि जो उनमें सबसे अधिक अल्लाह को याद करनेवाला हो।" (हदीस : मुसनद अहमद)

❖❖❖

20

भाव

(1) साक्षी भाव

(2) दास्य भाव

(3) माधुर्य भाव

मनुष्य संसार में किसी न किसी भाव को लेकर जीता है। यही भाव उसके जीवन का मूल रस बन जाता है, जिसके साथ उसकी व्यस्तता उसे अन्य चिन्ताओं और चिन्तनों से दूर रखती है, उसका जीवन एक विशेष ढर्रे र व्यतीत होता है। यूँ तो कितने ही भाव और भावनाएँ हैं जिनमें मनुष्य ास्त दिखाई पड़ता है, किन्तु प्रमुख भाव तीन हैं–

1. साक्षी भाव

2. दास्य भाव

3. माधुर्य भाव

यह सांसारिक जीवन शाश्वत् नहीं है, इसलिए इसे अभीष्ट समझना ाही न होगा। वर्तमान जीवनकाल की हैसियत वास्तव में एक अवसर की । किन्तु यह अवसर बहुमूल्य है जिसकी ओर साधारणतया ध्यान नहीं ाता। जनसामान्य की दशा उस बालक जैसी दीख पड़ती है जो एक बड़े ले में खो गया है। वह अपने और घरवालों के विषय में कुछ नहीं बताता। ले का आकर्षण कुछ ऐसा है कि उसे इसकी चिन्ता भी नहीं कि वह कौन ? वह मेले का एक हिस्सा बनकर रह गया है। ठीक यही दशा जैसा कि म कह चुके हैं दुनिया में मनुष्य की दिखाई पड़ती है। वह संसार में ऐसा ो गया है कि उसे किसी और चीज़ की फ़िक्र ही नहीं होती। उसकी दृष्टि सत्य वह है, जिसे वह छूता और देखता है और जिससे भौतिक रूप से से लाभ पहुँच रहा होता है। जिस ढंग से जनसाधारण का जीवन व्यतीत

होता है, वही उसे भी स्वीकार्य हो जाता है।

इससे बड़ी हानि यह होती है कि उसे कभी भी परिचय प्राप्त नहीं हो पाता और न उसे अपने आपको जानने की ज़रूरत महसूस होती है। जब उसे अपनी ख़बर ही नहीं है तो फिर वह जीवन के किसी उच्चतम अभिप्राय के बारे में क्या सोच सकता है? अगर किसी से इस सम्बन्ध में वह कुछ सुनता भी है तो वह उसे हलके अन्दाज़ में लेता है। इसका परिणाम यह होता है कि अपने वर्तमान पर वह जैसा भी हो सन्तुष्ट रहता है और इस सिलसिले में उसे कोई बेचैनी महसूस नहीं होती। मिर्ज़ा ग़ालिब को इसका एहसास हुआ था कि वे वास्तव में जो हैं उससे वे नितान्त अनभिज्ञ हैं। वे कहते हैं :

हम वहाँ हैं जहाँ से हमको भी।
ख़ुद हमारी ख़बर नहीं आती।।

इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य स्वयं अपने लिए भी किसी रहस्य से कम नहीं और वास्तव में यही रहस्यमयता उसे मूल्यवान बनाती है। अन्यथा फल-फूल और सोना-चाँदी की तरह उसे समझने में कोई परेशानी न होती और न उसके मूल्य के निर्धारण में कोई कठिनाई पेश आती। यद्यपि मनुष्य अपने को पूर्ण रूप से नहीं जान सकता, फिर भी उसे कुछ तो अपने विषय में ज्ञात होना चाहिए ताकि वह कोई ऐसी नीति अपनाने से बच सके जिससे उसकी विशिष्टता को आघात पहुँचता हो।

इस सम्बन्ध में ज्ञानियों ने जो मार्गदर्शन किया है वह महत्वपूर्ण है उससे यह भी पता चलता है कि उन्होंने इस विषय में अपने को हर प्रकार के भ्रम से दूर रखने की कोशिश की है। उनका कहना है कि साक्षी भाव वह विधि है कि जिसके द्वारा मनुष्य अपने निकट पहुँच सकता है, अन्यथा भटकने से उसे बचना बहुत मुश्किल है। साक्षी भाव अपने अन्दर पैदा करने का मतलब यह है कि हमें यह ज्ञात हो कि संसार में हम जो कुछ देखते हैं और जो घटनाएँ भी हमारे समक्ष घटती रहती हैं, उदाहरणार्थ सूरज का उदय और अस्त होना, फूलों का खिलना और मुरझाना, रातों में तारों का चमकना जीवन में आनेवाली सुख-दुख की घड़ियाँ, लोगों का हमारे साथ अच्छा-बुर

व्यवहार आदि जो कुछ भी संसार में हम देखते हैं उन सबमें हमारी हैसियत मात्र साक्षी की होती है। उससे अधिक की नहीं होती। नदी बह रही है, सूरज डूब रहा है, पक्षी आकाश में पर फैलाए उड़ रहे हैं, किसी घटना से हम द्रवित हो जाते हैं और किसी बात से हर्षित हो उठते हैं। हमें जानना चाहिए कि न हम नदी और उसका प्रवाह हैं, न सूरज जो डूब रहा है और न पक्षी जो पंख फैलाए उड़ रहे हैं, न हम दुख हैं और न हर्ष, हम इन सबके केवल साक्षी हैं। मौलाना जलालुद्दीन रूमी ने भी कहा है—

"आदमी दीदस्त बाक़ी लह्म व पोस्त।"

अर्थात् "मनुष्य मात्र देखना (Seeing) है। शेष जो कुछ है, वह मात्र मांस और खाल है।"

यह साक्षी भाव जीवन के क्रिया-कलाप में विलुप्त होने से बचाता है और इसके द्वारा बहुत जल्द एक प्रकार की तटस्थता प्राप्त हो जाती है और कितनी ही चीज़ों से हम मुक्त हो जाते हैं और फिर हमारे पास इसके लिए पर्याप्त समय होता है कि हम जीवन में अपने वास्तविक कर्तव्य को पूरा कर सकें और उस लक्ष्य को पा सकें जिसे प्राप्त करने के लिए ही यह जीवन मिला है। जीवन एक अवसर है और बहुमूल्य अवसर।

साक्षी भाव का पैदा होना कोई साधारण बात नहीं है। यह एक ऐसी घटना है जो जीवन को बदलकर रख देती है, मनुष्य के जीवन का स्तर अत्यन्त उच्च हो जाता है और उसमें चारचाँद लग जाते हैं, फिर एक खोज शुरू हो जाती है। आदमी पुकार उठता है कि किसकी अनुकम्पा है कि जिसने हमें चमत्कृत किया। कौन है जो हमें विभिन्न रूपों और विभिन्न अन्दाज़ में निमन्त्रण दे रहा है? उषा का निर्माल्य किस प्रेमपात्र की पवित्रता की सूचना देता है, यह वृहद् जगत् किस प्रभु की महानता को अभिव्यक्त कर रहा है, यह रात का आगमन और निद्रा किस शुभ विलीनता की ओर संकेत करती है। ये सारी ही चीज़ें हमारे अन्दर दास्यभाव का संचार करती हैं। हमें ज्ञात होता है कि हम स्रष्टा नहीं, बल्कि किसी की संरचना हैं। हम स्वतन्त्र नहीं, किसी के अधीन हैं, और यह अधीनस्थता वरदान है, अभिशाप नहीं।

जीवन में निरन्तर दास्यभाव को बनाए रखने की आवश्यकता होती है।

यही भाव हर प्रकार की पथभ्रष्टता से बचाए रखता है।

इतिहास बताता है कि जब भी मनुष्य ने अपनी असल हैसियत को भुला दिया और अपने को स्वतन्त्र समझा और यह ख़याल किया कि वह अपने कर्मों के प्रति किसी के समक्ष उत्तरदायी नहीं है, फिर उसे ज़ालिम और निरंकुश बनने से कोई चीज़ न रोक सकी। उसने संसार में जो अत्याचार और रक्तपात किए हैं, उसकी कल्पनामात्र से ही आत्मा काँप उठती है।

यह समझना ग़लत होगा कि दास्य-भाव ग़ुलामी और बन्दगी की ऐसी भावना है जिसमें कोई रस नहीं है। दास्य-भाव वास्तव में हमारी मूल हैसियत का द्योतक है। यह दासता एक ऐसे ईश्वर की होती है जो जगत् का सम्राट ही नहीं, हमारा आराध्य और प्रेम-पात्र भी है। हम उसकी आज्ञा का पालन ही नहीं करते बल्कि उसकी पूजा भी करते हैं। यह पूजा वास्तव में प्रेम का अतिरेक है। जब प्रेम-भाव अत्यन्त प्रगाढ़ हो जाता है तो उसे व्यक्त करने के लिए प्रेम शब्द छोटा पड़ जाता है और इसे व्यक्त करने के लिए पूजा, इबादत (Worship) आदि का सहारा लिया जाता है। ईश्वरीय सत्ता की महानता और सौंदर्य हमारे भीतर जो भाव जगाता है, वह है मुग्धता और समर्पण। प्रेम-पात्र के समक्ष बिछ जाना प्रेम का स्वभाव है। पूजा और बन्दगी का विशिष्ट आधार प्रेम ही है। प्रेम माधुर्य भाव के बिना सम्पन्न नहीं होता, इसलिए आध्यात्मिक जीवन में माधुर्यभाव का पाया जाना अनिवार्य है। विद्वानों का यह मत सर्वथा सत्य है कि गहराई में जाकर धर्म मात्र ज्ञान और तत्वदर्शिता न रहकर सौंदर्य-बोध बन जाता है जिसे जमालियाती एहसास भी कहा जाता है।

❖❖❖

21

ख़राबियाँ जो दिखाई नहीं देतीं

(1) लोग क्षुद्र से जुड़े हुए हैं, किन्तु उन्हें इसका ध्यान नहीं है,
(2) श्रेष्ठ को अश्रेष्ठ चला रहा है, लेकिन लोगों को दिखाई नहीं देता,
(3) चीज़ें अपने मालिक (Owner) को इस्तेमाल कर रही हैं, किन्तु उन्हें इसका एहसास नहीं है।

ज़िन्दगी में कुछ ख़राबियाँ ऐसी होती हैं जिनको सभी जानते हैं। उनके बुरी होने में किसी को कोई सन्देह नहीं होता। जैसे झूठ बोलना, किसी को धोखा देना, चोरी करना, मदिरापान, व्यभिचार, अकारण हत्या करना, दिए हुए वचन से फिर जाना और दुराचार इत्यादि। ये ऐसी बुराइयाँ हैं जिनको सभी बुरा जानते हैं, इनके बुरा होने से कोई भी इनकार नहीं कर सकता। किन्तु कुछ बुराइयाँ और ख़राबियाँ ऐसी होती हैं जो अत्यन्त ख़तरनाक होती हैं, जिनके कारण मानव-जीवन अत्यन्त कुरूप होकर रह जाता है, जीवन का सौंदर्य और उसकी गरिमा नष्ट हो जाती है, किन्तु आदमी को इसका एहसास नहीं होता। वह समझता है कि सब ठीक चल रहा है, जीवन ठीक ढंग से बीत रहा है। उसके दिल में सिरे से कोई खटक पैदा ही नहीं होती। वह ख़याल करता है कि वह अपने जीवन के साथ कोई ग़लत नीति अपनाए हुए नहीं है। बल्कि उसकी ज़िन्दगी उसी तरह की गुज़र रही है, जैसी गुज़रनी चाहिए थीं। हम यहाँ कुछ ऐसी ख़राबियों का उल्लेख करना चाहते हैं जो साधारण ख़राबियाँ नहीं हैं, बल्कि वे ऐसी ख़राबियाँ हैं जिनके कारण मानव जीवन-विकृत होकर रह जाता है। उसकी सारी आत्मा नष्ट हो जाती है और जीवन की वे सभी सम्भावनाएँ सहसा समाप्त हो जाती हैं, जिन सम्भावनाओं के द्वारा मनुष्य उच्चता के शिखर पर पहुँच सकता था।

उन दिखाई न देनेवाली ख़राबियों में से एक ख़राबी यह है कि मनुष्य क्षुद्र से जुड़ जाए और अपनी महिमा को गवाँ बैठे। क्योंकि यह सम्भव नहीं कि क्षुद्र से जुड़कर कोई अपनी महानता को बचा सकता है। क्षुद्र से जुड़ने

के बाद आदमी क्षुद्र ही हो सकता है, क्योंकि किसी दूसरी सम्भावना के लिए उसने अपने यहाँ जगह ही शेष न रहने दी। उदाहरणतः किसी व्यक्ति ने यदि धन कमाने को ही सब कुछ समझ लिया और इस दुनिया के सिवा किसी और जीवन में उसे विश्वास नहीं, तो फिर अमरत्व के गुण उसमें कैसे पैदा हो सकेंगे? धन के पीछे वह दौड़ता रहेगा और उसकी यह दौड़ कभी समाप्त होनेवाली नहीं। उसपर यह सूत्र चरितार्थ नहीं हो सकता–

अमरत्व पुत्रोस्य (अर्थात् तुम अमरत्व के पुत्र हो)

अमरत्व का उसके विचार-भाव और मनोवृत्ति से कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता। वह तो मृत्यु से जुड़ गया। अब उसके यहाँ वह जीवन्तता सम्भव नहीं जो उस व्यक्ति के यहाँ पाई जाएगी, जिसके यहाँ अमरता से भिन्न किसी चीज़ के लिए जगह नहीं। जो चलता है तो अमरत्व की भूमि पर, जिसकी कामनाएँ अमरत्व से सम्बद्ध होती हैं। उसके यहाँ अमरत्व से रिक्त कोई चीज़ नहीं पाई जाती। एक धनवान की सोच और निर्धन की सोच में मौलिक अन्तर होता है। धनवान जो भी सोचेगा उसकी सोच में निर्धनता का भाव बाधा नहीं डाल सकता। इसलिए कि उसके यहाँ निर्धनता का अभाव है। वह अपने को धनवान मानकर चलता है, उसकी योजनाओं में कहीं निर्धनता दिखाई नहीं दे सकती। ठीक इसी तरह अमरत्व के वातावरण में कहीं भी मृत-भाव को ठिकाना नहीं मिल सकता। ऐसा व्यक्ति अमरत्व से जिसका नाता हो कोई ऐसा कार्य नहीं कर सकता जो क्षुद्र प्रकृति के लोगों का होता है। स्वार्थपरता, लोभ, ईर्ष्या और किसी को हानि पहुँचाने की भावना उसके यहाँ नहीं पाई जा सकती। जो कोई अपने को ईश्वर की अनुकम्पा से निरन्तर आच्छादित महसूस करेगा, ईश्वर के प्रति अनिवार्यतः वह आभारी होगा। वह देख रहा होगा कि ईश्वरीय अनुकम्पा की वर्षा में अहंकार का नहीं बल्कि कृतज्ञता के प्रकाशन का सुअवसर होता है। उसकी कोशिश यह होगी कि उसकी अपनी संवेदनशीलता में कमी न आने पाए और वह पूर्णतः ईशकृपा के प्रति सजग रह सके।

दूसरी ख़राबी जो साधारणतया हमें दिखाई नहीं देती वह है यह दशा कि श्रेष्ठ का चालक अश्रेष्ठ हो। मनुष्य के जीवन में जिन उच्च भावनाओं

को प्रेरक का कार्य करना चाहिए, उनके स्थान पर यदि वह निम्न कोटि की चीज़ों से प्रेरित होकर कार्य करता है तो यही कहा जाएगा कि श्रेष्ठ का मार्गदर्शन अश्रेष्ठ कर रहा है। उसका जीवन यदि प्रेम और करुणा के द्वारा संचालित नहीं होता बल्कि उसका जीवन-रथ घृणा, स्वार्थपरता और लोभ आदि के द्वारा चलता है तो यही कहा जाएगा कि श्रेष्ठ पर अश्रेष्ठ ने अपना अधिकार जमा लिया है, श्रेष्ठ ने कौड़ियों के बदले अपनी बड़ाई बेच दी है। किन्तु वह इसे स्वीकार नहीं कर सकता, क्योंकि समय की धूल ने उसे ऐसा अंधा बना दिया है कि उसे यह ख़राबी दिखाई ही नहीं देती।

एक और उदाहरण लें। मानव श्रेष्ठ है। मानव का व्यक्तिगत जीवन हो या सामाजिक जीवन, मनुष्य का अपना व्यक्तिगत स्वभाव हो या उसकी अपनी जीवन प्रणाली, सब कुछ ईश्वरीय आदेश के अधीन होना चाहिए। मानव समाज के लिए ईश्वर ने जो आदेश दिए हैं उनका पालन करना चाहिए। हमारी आर्थिक व्यवस्था हो या राजनीतिक व्यवस्था, हरेक का संचालन ईश्वर के हाथ में होना चाहिए। हम जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ईश्वर की मरज़ी और प्रसन्नता को अपने सामने रखें। हमारा कोई भी काम ऐसा न हो जिसमें ईश्वरीय आदेश की उपेक्षा हो रही हो।

आज हम देखते हैं कि लोगों ने, विशेष रूप से उन क़ौमों ने जो उन्नति के शिखर पर दिखाई देती हैं, ज़िन्दगी की बागडोर ईश्वर के हाथ से छीन ली है। श्रेष्ठ की मौजूदगी में अश्रेष्ठ ने सब कुछ अपने हाथ में ले रखा है। उसने अपना संचालक अपनी इच्छाओं और वासनाओं को बना रखा है, जिसके कारण मानवता कई भागों में विभक्त होकर रह गई है। एक राष्ट्र ने अपने लिए जो मापदण्ड बना रखे हैं, वे और हैं और दूसरी क़ौमों के यहाँ कुछ दूसरे ही मापदण्ड पाए जाते हैं। दूसरी क़ौम के साथ ज़ुल्म हो तो उसे ज़ुल्म नहीं समझता, उसे केवल अपनी चिन्ता होती है। उसकी भूख इतनी बढ़ी हुई होती है कि वह अन्य राष्ट्रों पर भी अपना ही नियन्त्रण चाहता है। राष्ट्रवाद और उपनिवेशवाद वर्तमान युग के हथकण्डे रहे हैं। कमज़ोर क़ौम को अपना ग़ुलाम बनाना पाश्चात्य देशों का खेल रहा है। कभी किसी चिन्तक को उसमें अन्याय महसूस भी हुआ तो उसने ज़ुल्म को हटाने के लिए

ज़ुल्म का ही सहारा लिया। वह कर भी क्या सकता था! उसके पास वह समझ कहाँ और उसके यहाँ वह विशाल हृदयता कहाँ कि वह हरेक के साथ इन्साफ़ कर सके! आज प्रजातन्त्र के नाम पर जो कुछ हो रहा है, उसमें प्रजातन्त्र कितना है, इस बात को जाननेवाले भलीभांति जानते हैं।

एक तीसरी ख़राबी भी है जो लोगों को दिखाई नहीं देती, जिसके देखने में लोग असमर्थ नज़र आते हैं। इस ख़राबी को वही समझ सकता है जो मानव के उस उच्च स्थान से परिचित हो जिस स्थान के लिए ईश्वर ने उसे पैदा किया है। ईश्वर ने मनुष्य के लिए मनुष्य की महानता के समस्त द्वार खुले रखे हैं। ईश्वर ने मनुष्य को अपना दर्पण बनाया है जिसके द्वारा वह चाहता है कि उसके उच्चतम गुणों की अभिव्यक्ति हो। ईश्वर ने मनुष्य के लिए सारे जगत् की रचना की। उसके लिए सूर्य-चन्द्र के दिए जलाए। तारों का आकाश सजाया, नाना प्रकार के फल-फूल और अनाज पैदा किए और स्वयं मनुष्य को एक महान कार्य के लिए यह उच्चता प्रदान की। और वह महान कार्य यह है कि वह ईश्वर की महिमा और उसके सौंदर्य एवं प्रताप को महसूस करे और इसकी ओर से कभी भी ग़ाफ़िल न हो। यह वह प्रीतिकर बोझ है जिसे उठाने के लिए उसमें हर प्रकार की क्षमता रखी। उसे विवेक और चेतना से आभूषित किया। उसके हृदय में प्रेम जैसी बहुमूल्य सम्पदा रख दी। संसार की सारी वस्तुओं पर उसे अधिकार प्रदान किया, इसे उनका मालिक (Owner) बनाया, किन्तु हुआ यह कि मनुष्य उन चीज़ों का और जो सुख-सामग्री उसके लिए जुटाई गई थी उसी का आसक्त और दास बनकर रह गया। उसके जीवन का मात्र यही उद्देश्य हो गया कि सुख-सामग्री जुटाए और उन ही चीज़ों को जुटाने और निखारने में लगा रहे और उन ही सांसारिक वस्तुओं को समेटने और उन ही की चिन्ता में जिए और उनसे मिलनेवाली खुशियों को अपनी खुशी समझे। इसका परिणाम यह हुआ कि जीवन में वास्तविक महत्व मानव का नहीं रहा बल्कि शारीरिक वस्तुएँ (Worldly Goods) ही मूल्यवान हो गईं। देखने में यह लगता है कि मनुष्य चीज़ों को इस्तेमाल कर रहा है, किन्तु सत्य यह है कि चीज़ें ही उसे इस्तेमाल कर रही हैं। वस्तुएँ उसकी नहीं, बल्कि वह उन वस्तुओं का होकर

रह गया। इससे बड़ी विडम्बना तथा ख़राबी और क्या हो सकती है? किन्तु यह ख़राबी लोगों को दिखाई नहीं देती। यह ख़राबी तो उसी रूप में दिखाई दे सकती है जबकि मनुष्य को अपनी वास्तविक गरिमा का एहसास हो। वे लोग मानवता के बड़े उद्धारक होंगे जो लोगों की बेहोशी और मूर्छा को दूर करें और जिसके फलस्वरूप मनुष्य अपनी महिमा और सौंदर्य को देख सके।

❖❖❖

22

चेतना के स्तर

(1) चेतना (Consciousness)
(2) अन्तर्चेतना (Sub-consciousness)
(3) अचेतन (Unconsciousness)

मानसिक दृष्टि से मानव के व्यक्तित्व में उसकी चेतना तीन स्तर प काम करती है। आदमी के हाव-भाव और व्यवहार आदि में उसकी चेतन का बड़ा हिस्सा होता है। साधारणतया इस तथ्य को न जानने के कारण आदमी बड़े धोखे में रहता है। वह नहीं जानता कि उसके व्यक्तित्व क निर्माण चेतना के तीन स्तर से मिलकर हुआ है। साधारण आदमी समझत है कि उसमें नैतिक दृष्टि से कोई दुर्बलता नहीं पाई जाती। लेकिन स्वयं उसे भी उस समय बड़ा आश्चर्य होता है, जब वह सहसा ऐसा कार्य कर जात है जो उसे कदापि शोभा नहीं देता। मैंने स्वयं एक ऐसे व्यक्ति को देखा थ जो अत्यन्त सज्जन मालूम होता था; अपने किराएदार से उसका कुछ झगड़ा चला आ रहा था। अदालत में मुक़द्दमा चल रहा था कि अचानक उसने अपने किराएदार की हत्या कर दी। किराएदार की बेटी अपने बूढ़े बाप को बचाने पहुँची तो उसने उसपर भी प्रहार कर दिया। बाप-बेटी दोनों ही की मृत्यु हो गई। वह किराएदार उसका गुरु भी था। स्कूल में उसने उससे शिक्षा प्राप्त की थी।

क़ातिल को बाद में यह एहसास हुआ कि उसने ग़लत कार्य किया लेकिन उसके अब इस पछतावे से क्या होता! जज ने फाँसी की सज़ा सुना दी। सारी अपीलें रद्द हो गईं। अन्ततः उसे मृत्युदण्ड दे दिया गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि मनुष्य में तीन प्रकार की चेतनाएँ पाई जाती हैं। आदमी के कार्य और चरित्र के पीछे इन तीनों का हाथ होता है। चेतना के ये तीन स्तर इस प्रकार हैं—

1. चेतना (Consciousness)

2. अन्तर्चेतना (Sub-consciousness)

3. अचेतन (Unconsciousness)

इन तीनों में चेतना बिल्कुल जागृत अवस्था में होती है जिससे हम हर वक़्त काम लेते रहते हैं। हमारे वे विचार जो हर समय हमारे समक्ष रहते हैं, जिनके अन्तर्गत हम कोई नीति निर्धारित करते हैं, उनका सम्बन्ध चेतना के इसी स्तर से है।

इसकी मिसाल ऐसी है जैसे हम कोई बड़ा काम कर रहे हों जिसमें बहुत-से लोगों का सहयोग हमें लेना पड़ता हो और उनका सहयोग निरन्तर हमें मिल रहा हो। ऐसी स्थिति में ये सारे ही लोग हमारी निगाहों में होंगे, उन्हें हम विस्मृत नहीं कर सकते। उनका सम्बन्ध निरन्तर हमारी चेतना से बना रहेगा और हम उनसे भलीभाँति परिचित होंगे। इन लोगों के अतिरिक्त कुछ ऐसे लोग भी होंगे जिनसे हमारा मामला प्रत्येक दिन का नहीं बल्कि कभी-कभार का होता है। उनसे हमारा सम्पर्क नित्य का न होगा फिर भी हम उनसे जुड़े होंगे। सामने आने पर उन्हें पहचानने में देर न लगेगी। ऐसे लोगों का सम्बन्ध हमारी अन्तर्चेतना से होता है। तीसरे प्रकार के लोग वे हैं जो जीवन में कभी मिले थे, कुछ अपना असर डाला था, लेकिन उनसे कोई स्थायी सम्पर्क क़ायम न रह सका। संयोग से भी उनसे कभी मिलना न हो सका। लेकिन ऐसा नहीं है कि ऐसे लोगों से हमारा प्रयोजन न रहा और हमारी चेतना उनसे सर्वथा मुक्त है। ऐसे लोगों का सम्बन्ध हमारे अचेतन से होता है। यदि कभी वे हमारे सामने आ जाएँ जिनके आने की कोई आशा न थी और न उनसे मिलने की हमें कोई इच्छा ही थी तो उन्हें पहचानने में विलम्ब भले ही हो किन्तु कुछ देर के पश्चात् हमें याद आ जाता है कि कभी हम उनसे मिल चुके हैं।

एक-दूसरी मिसाल लीजिए। हमारे कुछ विचार ऐसे होते हैं जो प्रबल और उभरे हुए होते हैं। वे विचार से ज़्यादा हमारी इच्छा के परिचायक होते हैं। ये ऐसे विचार और इच्छाएँ हैं जिनके सहारे जीवन में गति रहती है और जीवन का कार्यकलाप चलता रहता है। किन्तु कुछ विचार ऐसे होते हैं जो

हमारी प्रबल कामना और इच्छा नहीं बन सके। फिर भी ये हमारे अन्तर चेतना में विद्यमान रहते हैं। उनकी मौजूदगी हमारे व्यक्तित्व पर प्रभाव डालती है। जीवन में कुछ कामनाएँ कोशिश के बावजूद पूरी नहीं होतीं, मगर उनसे हमारा अन्तर मुक्त नहीं होता। कभी-कभी स्वप्नों में वे अपनी याद भी दिलाती रहती हैं। हमारे भीतर उनकी मौजूदगी ख़तरनाक भी हो सकती हैं। कभी-कभी हम उनके दबाव में आकर ग़लत क़दम भी उठा सकते हैं। सामाजिक मर्यादाएँ, समाज के क़ानून और नियम हमें मजबूर करते हैं कि हमारी जो इच्छाएँ और कामनाएँ पूरी नहीं हो रही हैं, उनके बारे में हम सब्र करें, किन्तु इस सब्र से इच्छाएँ दब सकती हैं, मिटती नहीं। इनके कारण हम मानसिक उलझनों का शिकार हो सकते हैं। हीनभावना भी एक रोग है जिसमें हम ग्रस्त हो सकते हैं। महत्वाकांक्षा भी एक बड़ी बीमारी है जो आदमी के जीवन के सन्तुलन के लिए अत्यन्त घातक है।

एक व्यक्ति देखने में अत्यन्त सज्जन लगता है, उसके आचार-व्यवहार से यही प्रतीत होता है कि वह नेक इनसान है। लेकिन उसपर भरोसा करने के लिए यही काफ़ी नहीं है कि वह अपने कामों की दृष्टि से ईमानदार दिखाई देता है। कतिपय आदमी की ईमानदारी विवशता की ईमानदारी होती है। उसे बुरा बनने और बेईमानी करने का अवसर नहीं मिल सका इसलिए उसे नेक बनना पड़ गया। ऐसे लोग उनसे अधिक ख़तरनाक होते हैं जो अपनी बुराइयों के लिए जाने-पहचाने होते हैं।

चरित्र के पूर्णतः सच्चरित्र होने के लिए आवश्यक हैं कि हम मनुष्य की मानसिक संरचना और उसकी जटिलता को समझें और फिर चरित्र-निर्माण की प्रक्रिया का निर्धारण करें। चरित्रवान होने के लिए आवश्यक है कि चेतना के उपरोक्त तीनों स्तरों के सम्बन्ध में हमें इत्मीनान हासिल हो। केवल चेतना के बाह्य स्तर तक सुधार और प्रशिक्षण पर्याप्त नहीं। ज़रूरत इसकी है कि जिस तरह हमारी कोशिश यह होती है कि हम ऐसी बात ज़बान पर न लाएँ जो बुरी हो और कोई ऐसा कार्य न करें जो अशिष्ट हो, इसी तरह हम अपनी अन्तर्चेतना के भी निरीक्षक बनें और सतर्क रहें कि हमारी अन्तर्चेतना या अचेतन में कोई ऐसी चीज़ एकत्र न होने पाए। जो ग़लत और अशुभ हैं।

हमें चाहिए कि जिन बातों को हम लोगों से छिपाना चाहते हैं, वे बातें हममें पाई ही न जाएँ कि उन्हें छिपाने की आवश्यकता पड़े। हमें धोखा होता है कि अमुक बुराई हममें पाई ही नहीं जाती। हमने उसे त्याग दिया है। हालाँकि सम्भव है कि उस बुराई से हमारा लगाव बाक़ी हो, केवल व्यावहारिक रूप में उससे बचते हों। याद रहे, अचेतन में किसी बुराई की मौजूदगी बड़ी ख़तरनाक है। इसकी मिसाल ऐसी है जैसे किसी ज़हरीले साँप को किसी बर्तन में बन्द करके हम निश्चिन्त हो जाएँ कि अब वह हमारे लिए ख़तरा नहीं है। सच्ची बात तो यह है कि जब तक वह साँप ज़िन्दा है और हमारे घर में है, हमारे लिए ख़तरा बना रहेगा। ज़रूरत है कि बुराई छाया रूप में भी हमारी चेतना के किसी कोष में मौजूद न रहे।

इसके लिए हमें समस्या को गहराई से देखना होगा। अँधेरे को धक्का देकर हटाया नहीं जा सकता, अँधेरे से बचने के लिए प्रकाश की खोज ज़रूरी है। यदि ठीक तौर पर प्रकाश जुटा सकें तो अँधेरा समाप्त हो जाएगा। चेतना के प्रत्येक स्तर पर प्रकाश का आयोजन करना होगा, ऐसा प्रकाश जो चेतना, अन्तर्चेतना और अचेतन, सब में समाहित हो और अँधेरे को कहीं भी छिपने को जगह न मिल सके। अगर कोई अनिष्ट चीज़ हमारी चेतना में पाई भी जाए तो वह ख़तरा बनकर न रहे बल्कि वह शक्तिहीन होकर रहे। अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने कहा है कि तुममें अच्छा व्यक्ति वह है जिससे भलाई ही की आशा की जाए, बुराई के सिलसिले में जिसकी तरफ़ से हम निश्चिन्त रह सकें। मानव की मानसिकता को समझे बिना सही तौर पर मानव के चारित्रिक प्रशिक्षण का कार्य नहीं किया जा सकता।

❖❖❖

23

ज्ञान की श्रेणियाँ

मनुष्य के पास जो ज्ञान होता है उसकी तीन श्रेणियाँ सम्भव हैं।

(1) इन्द्रियगत ज्ञान (Sensat ional knowledge)

(2) परिकल्पनात्मक ज्ञान (Conception knowledge)

(3) अवगम (Perceptional knowledge)

इन्द्रियगत ज्ञान वह है जो मनुष्य को अपनी ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा प्राप्त होता है। वह आँखों से देख रहा है कि सूर्य निकल आया है और फैल गय है। रात में वह आकाश में चमकते हुए तारों को देख रहा होता है। कभ देखता है कि चारों ओर चाँदनी छिटक रही है। जंगलों में वह नाना प्रकार के पशुओं को देखता है। धरती में जब कभी भूकम्प आता है तो इसे वह अपनी आँखों से देखता है। मौसमों के परिवर्तनों को भी वह महसूस करत है। कभी ग्रीष्म ऋतु होती है और कभी शरद् ऋतु। वह अपने अन्दर ख़ुशी और ग़म को भी महसूस करता है। कभी वह क्रुद्ध होता है और कभी प्रसन्न इस प्रकार का जो ज्ञान और अनुभव मनुष्य को प्राप्त होता है, उसके विषय में उसे कोई सन्देह नहीं होता। इस प्रकार के ज्ञान में बड़ी हद तक पशु-पक्षी भी हमारे साथ होते हैं।

दूसरे प्रकार का ज्ञान वह है जिसका सम्बन्ध ज्ञानेन्द्रियों से नहीं बल्कि मनुष्य की कल्पना से होता है। इस प्रकार के ज्ञान में भटकने की सम्भावनाएँ अधिक होती हैं। उदाहरणतया— आदमी कभी यह कल्पना कर बैठता है कि यह दुनिया यूँ ही अपने आप चल रही है, इसे चलानेवाली कोई ज्ञानवान सत्ता नहीं है। इस जगत् के अस्तित्व में आने का कोई ऐसा वास्तविक लक्ष्य भी नहीं है, जिसके अन्तर्गत जगत् और उसकी रचना की गई हो। हर व्यक्ति अपने जीवन को व्यतीत करके सैदव के लिए मिट जाता है। उसकी दृष्टि

में जो उसके लिए लाभदायक और प्रिय हो, वही अच्छा और जो उसके लिए कष्टदायक हो और जिससे कोई भौतिक लाभ न पहुँच रहा हो, वही बुरा है। उसकी दृष्टि में भलाई या बुराई का कोई ऐसा भाव नहीं होता जिसका कोई शाश्वत परिणाम निकलता हो। जब मनुष्य का जीवन नश्वर है और इस जीवन के पश्चात् किसी और प्रकार के जीवन से उसका परिचय नहीं है तो फिर उसके विचार और धारणाओं का कोई शाश्वत मूल्य निर्धारित नहीं किया जा सकता।

इसके विपरीत एक दूसरा व्यक्ति भी हो सकता है जिसकी कल्पना यह होती है कि यह जगत् निर्जीव पदार्थ का चमत्कार नहीं है। इसका अस्तित्व में आना और बाक़ी रहना कोई साधारण और सादा-सी बात नहीं है। जगत् में जो नियम और क़ानून क्रियाशील दिखाई देते हैं, वे न तो अपने आप बन सकते हैं और न इसकी सम्भावना है कि वे असाधारण रूप में नियमबद्ध क्रियाशील हो सकें। यह जगत् और जीवन किसी महान् सत्ता की असाधारण शक्ति एवं सामर्थ्य का परिचायक है। उस सत्ता की महानता के समक्ष हमारा झुक जाना ही हमारा कर्तव्य होता है। फिर हमारे भीतर नैतिक चेतना भी पाई जाती है। हम झूठ, पाखण्ड और हर प्रकार के अन्याय और अत्याचार को बुरा समझते हैं। सत्य, न्याय और करुणा को प्रशंसनीय कार्य कहते हैं। यह नैतिक चेतना असाधारण चीज़ है। यह चेतना हमें उत्तरदायी बनाती है और हमें यह एहसास दिलाती है कि अच्छे और बुरे कामों के लिए हम ज़िम्मेदार हैं और उनके लिए हम उत्तरदायी हैं।

यह दूसरे प्रकार का ज्ञान मनुष्य को पशु-पक्षी आदि से भिन्न और विशिष्ट स्थान प्रदान करता है और उसे एक नाज़ुक मक़ाम पर ला खड़ा करता है। उसने यदि इस मक़ाम की महानता की उपेक्षा की और सही धारणा और उचित कल्पना से अपने को वंचित रखा तो उसकी दशा कारागार के उस क़ैदी की-सी होगी जो यह समझता हो कि कारागार के अतिरिक्त कहीं और कोई चीज़ नहीं पाई जाती। न कहीं कोई विस्तृत क्षेत्र और न कोई खुला वायुमण्डल पाया जाता है। उसे अपनी हीन दशा का एहसास हो या न हो किन्तु उसकी यह दशा शोचनीय होगी। अज्ञान के

कारण वह प्रसन्न और मस्त भी दिखाई दे सकता है। लेकिन उससे तथ्‍
बदल नहीं सकता।

ज्ञान का एक प्रकार और है जो अत्यन्त उत्कृष्ट (Sublime) होता है
इसे अवगम (Perception) से विभूषित करते हैं। इस प्रकार का ज्ञान मा
जानकारी का नहीं होता है, बल्कि यह ज्ञान यहाँ मनुष्य के हृदय की धड़क
बन जाता है। यदि वह जीवन के रहस्य को जानने की तरह जान सका
तो फिर यह ज्ञान उसके लिए प्रकाश होगा जो उसके सम्पूर्ण जीवन क
आशामय कर देगा। इस प्रकार का ज्ञान उसे उन खुशियों से परिचि
कराएगा जिनसे साधारण लोग अनभिज्ञ होते हैं। जीवन में यदि सत्य औ
ईश्वर का ज्ञान मनुष्य को अवगम के रूप में प्राप्त हो गया तो अनिवार्यत
वह उसके जीवन में गुणात्मक परिवर्तन होगा। वह व्यक्ति बदल जाएग
एक क्रान्ति उसके यहाँ घटित होगी। वह सत्य को जानता ही नहीं होग
बल्कि उसे जी रहा होगा, सत्य उसके यहाँ अभिलाषा का समानार्थी सि
होगा। उसका पूरा जीवन उससे प्रभावित होगा। वही सोचेगा, जो सोचन
चाहिए, वही जानेगा जो उसे जानना चाहिए, वही काम करेगा; जो उसव
करने का है। वह सत्य का रसास्वादन करेगा और महसूस करेगा कि उसे ज
ज्ञान और बोध (Awareness) प्राप्त हुआ है वह जीवन की सबसे मूल्यवा
चीज़ है।

❖❖❖

24

क़ुरआन की विशिष्टता

(1) ज्ञान का प्रकाश

(2) मार्गदर्शन

(3) दयालुता

क़ुरआन ने अपने विषय में एक जगह कहा है—

> "ये सूझ-बूझ की रौशनियाँ हैं तुम्हारे रब की ओर से और मार्गदर्शन और दयालुता हैं उन लोगों के लिए जो विश्वास करें।" (क़ुरआन, 7:203)

क़ुरआन की यह आयत बताती है कि क़ुरआन किसी मनुष्य का गढ़ा हुआ कलाम (वाणी) नहीं है, बल्कि यह समस्त मनुष्यों के प्रभु-पालनकर्ता की ओर से अवतरित हुआ है। जब क़ुरआन ईशवाणी है, तो उसकी जिन विशेषताओं का उल्लेख किया गया है उनपर भरोसा करना होगा। ईश्वरीय ग्रन्थ में किसी प्रकार की त्रुटि सम्भव नहीं है। यह किताब जिस उद्देश्य के अन्तर्गत अवतरित हुई है, उस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए इस किताब से अच्छी कोई किताब नहीं हो सकती।

उपरोक्त आयतों में कहा गया है कि यह क़ुरआन तुम्हारे रब की ओर से है। इसमें इस बात की ओर संकेत पाया जाता है कि इस किताब के अवतरण में ईश्वर की 'रबूबीयत' (पालने एवं विकसित करने का गुण) विद्यमान है। अर्थात् ईश्वर मनुष्य का ऐसा प्रभु नहीं है कि उसका मनुष्य की उन्नति और उसके आत्मिक विकास की ओर कोई ध्यान न हो और वह मनुष्य की केवल भौतिक आवश्यकताओं को ही जानता और उन्हें पूरी करता हो। उसने अनाज, तरकारी आदि खाद्य पदार्थ तो जुटाए हों किन्तु मनुष्य के आध्यात्मिक विकास और उन्नति के लिए कुछ न किया हो। यह क़ुरआन इसी उद्देश्य के अन्तर्गत अवतरित हुआ है कि मनुष्य के चारित्रिक और

आध्यात्मिक विषय में उसका मार्गदर्शन किया जाए ताकि मनुष्य का आत्मिक विकास सम्भव हो और वह नैतिकता के शिखर को पा सके। इस सम्बन्ध में क़ुरआन ने अपनी तीन विशेषताओं का उल्लेख किया है–

"वह बसीरत की रौशनियाँ (अर्थात ज्ञान का प्रकाश) है" अर्थात मनुष्य को सफल होने के लिए और हर प्रकार की पंथभ्रष्टता से बचने के लिए जिस ज्ञान की आवश्यकता है क़ुरआन के द्वारा उसे वह ज्ञान प्राप्त हो सकता है। फिर यही नहीं कहा कि वह प्रकाश है, बल्कि कहा कि प्रकाशों का पुंज है। क़ुरआन से मनुष्य जान सकता है कि उसके विचार (Thoughts) क्या होने चाहिएँ और क्या नहीं। वह मनुष्य को सूक्ष्म दृष्टि भी प्रदान करता है ताकि वह अपने प्रत्येक विचार और ख़याल के महत्व और उसके मूल्य को समझ सके। और इस प्रकार उसकी आत्मा और चित्त दोनों ही शान्ति और परितोष प्राप्त कर सकें।

क़ुरआन बताता है कि मनुष्य एक उत्तरदायी प्राणी है। उसे धरती में वे कार्य करने हैं जो ईश्वर को प्रिय हैं, और फिर उसे ईश्वर के पास वापस जाना है, जहाँ उसके सफल या असफल होने की घोषणा कर दी जाएगी। सफल होने की स्थिति में वह अमरत्व को प्राप्त होगा और उसके लिए हर सुख और सुविधा उपलब्ध होगी। जब ईश्वर किसी से ख़ुश होगा तो अनिवार्यतः उसकी सभी कामनाएँ पूरी होंगी।

क़ुरआन ने अपनी दूसरी विशेषता जो बताई है वह हमारे लिए मार्गदर्शन (Guidance) है। अर्थात् वह हमें बताता है कि व्यावहारिक रूप से हम किस प्रकार अपना जीवन व्यतीत करें और व्यक्तिगत जीवन में हमारी ज़िन्दगी का रुख़ क्या हो? सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में हम किस प्रणाली का पालन करें और उन समस्याओं को कैसे हल करें जो जीवन में हमें पेश आ सकती हैं? हमारी आचार-संहिता क्या हो? नैतिकता हमारी कैसी हो और राजनीति में हमारी क्या नीति हो और किस प्रकार हम हर विषय में अपने को संकुचित दृष्टिकोण से दूर रखें? सार्वभौमिकता और सर्वतोमुखी दृष्टिकोण की रक्षा हम किस प्रकार करें? इन सब बातों के सम्बन्ध में क़ुरआन हमारा मार्गदर्शन करता है।

क़ुरआन की तीसरी विशेषता यह है कि वह सर्वथा रहमत (ईशदयालुता) है। इसका अभिप्राय यह है कि परिणाम की दृष्टि से क़ुरआन रहमत लेकर उतरा है। यदि हम क़ुरआन के दिखाए हुए मार्ग पर चलते हैं और जिस ज्ञान से वह हमें सुशोभित करता है, उससे पूर्णतः लाभान्वित होते हैं और जिस जीवन प्रणाली की हमें शिक्षा देता है, यदि यथासम्भव उसका पालन करते हैं तो हम कभी भी घाटे में नहीं पड़ सकते। सांसारिक जीवन में भी इसका परिणाम कल्याणकारी और शुभ होगा। हर प्रकार की ख़राबियों और बिगाड़ से हम बच सकते हैं। हमारा लौकिक जीवन सुखकर होगा और हमारा पारलौकिक जीवन भी आभामय होगा और हम उच्च स्थान को पा लेंगे, जिसकी कामना प्रत्येक हृदय में रखी गई है।

❖❖❖

25

प्रशिक्षण

(1) आन्तरिक निर्मालय

(2) बाह्य कर्म और अन्तर के मध्य एकात्मता

(3) ईश्वर से सम्पर्क

मनुष्य ऐसा प्राणी है कि उसे अपने जीवन में बहुत कुछ जानना होता है और बहुत-से गुणों से सुसज्जित होने के लिए उसे साधना भी करनी पड़ती है। महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों की शिक्षा को लें, कितने ही वर्ष एक विषय में प्रवीणता प्राप्त करने में लग जाते हैं। किसी भाषा को सीखने के लिए कितना परिश्रम करना पड़ता है इसे सब जानते हैं। ठीक इसी तरह अपने जीवन को सही मार्ग पर लगाने और चरित्रवान होने के लिए भी परिश्रम और प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है और इसके लिए मनुष्य को साधना से गुज़रना पड़ता है।

यदि प्रशिक्षण की आवश्यकता होती तो हम सारे मनुष्यों को एक राह पर पाते। विचार और भाव की दृष्टि से उनमें कोई अन्तर न होता। किन्तु हम ऐसा नहीं देखते। मनुष्यों में यदि कुछ नेक हैं तो कितने ही दुष्ट पाए जाते हैं। कुछ लोग यदि ईश्वर में विश्वास रखते हैं तो कितने ही ऐसे भी हैं जो न ईश्वर में विश्वास रखते हैं और न वे आत्मा को मानते हैं। वे बस अपनी भौतिक आवश्यकताओं से परिचित हैं। किसी उच्च लक्ष्य को न वे जानते हैं और न जानने की उनमें इच्छा पाई जाती है। वे अगर किसी क़ानून का पालन भी करते हैं तो सिर्फ़ इसलिए कि देश का शासन उन्हें इसके लिए बाध्य करता है। फिर भी जब उन्हें मौक़ा मिलता है वे क़ानून को तोड़ देते हैं और अपना मतलब पूरा करने के लिए वे सब कुछ करते हैं जो वे कर सकते हैं। ज़ुल्म, दुराचार, हत्या और व्यभिचार आदि किसी अनिष्ट कर्म से उन्हें संकोच नहीं होता।

व्यक्ति के प्रशिक्षण के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण शस्त्र मिलता है। क़ुरआन में कहा गया है कि—

> "जो कुछ तुम्हारे जी में है, उसे तुम्हारा प्रभु पालनकर्त्ता भलीभाँति जानता है। यदि तुम अच्छे हुए तो निस्सन्देह वह भी ऐसे रुजू करनेवालों के लिए बड़ा क्षमाशील है।"
>
> (क़ुरआन, 17:25)

इस आयत में प्रशिक्षण की जिस विधि की शिक्षा दी गई है वह अत्यन्त मूल्यवान है। प्रशिक्षण के सम्बन्ध में इस आयत में तीन चीज़ों का उल्लेख किया गया है। उसमें पहली चीज़ है— अपने अन्तर का निर्माल्य। यदि हमारा अन्तर और हमारा हृदय विशुद्ध नहीं है तो हमारा कोई प्रयास भी हमारे जीवन को सुधार नहीं सकता और इस सिलसिले में सारे प्रयास व्यर्थ सिद्ध होंगे। जीवन में सारी चीज़ें हमारे अन्तर पर निर्भर करती हैं, यदि हमारा अन्तर विशुद्ध होगा तो क्या इसकी आशा की जा सकती है कि हमारा सब कुछ ठीक हो सकता है। ईश्वर भलीभाँति जानता है कि हमारा अन्तर कैसा है, हमारे दिल की हालत कैसी है। हमारे दिल में यदि ईमान है तो उसमें ईश्वर की महानता का एहसास किया जाता है और हम अपने हृदय में किसी को वह स्थान नहीं दे सकते जो स्थान ईश्वर का है। हमारे दिल में ईश प्रेम और ईश्वर के प्रति विनय-भाव और समर्पण की भावना पाई जाती है और जन सामान्य के लिए करुणा से हमारा दिल भरा हुआ है और हमारा अन्तर हर उस चीज़ को स्वीकार करता है, जो ईश्वर को प्रिय नहीं। हम भीतर से हर उस कार्य के करने को तैयार पाते हैं जो शुभ, कल्याणकारी और ईश्वर को प्रिय हैं। हमारा हृदय यदि ईश-प्रकाश से प्रकाशित है, तो हम उसी के प्रेम से जीवित हैं। ईश्वर का स्मरण हमारे लिए जीवन का अभिप्राय है तो उसकी विस्मृति किसी मृत्यु से कम नहीं। यदि हमारा हृदय और हमारा अन्तर इस प्रकार का है तो समझिए कि हमारा हृदय जागृत है और विकृतियों से सर्वथा मुक्त है।

हृदय या अन्तर की शुद्धता के पश्चात दूसरी चीज़ जो देखने की है, वह यह कि हमारा बाह्य जीवन कैसा है? हमारे कर्म और हमारे अन्तर के

मध्य एकात्मता पाई जाती है या नहीं? यदि हमारे अन्तर और बाह्य के मध्य एक रूपता और एकात्मता पाई जाती है और दोनों एक-दूसरे का साथ देते हैं और परस्पर एक-दूसरे का निषेध नहीं करते हैं, तो यह इस बात का प्रमाण होगा कि हमारा अन्तर ही नहीं बल्कि हमारे कर्म भी विकार रहित हैं। फिर तो हमारे अन्तर से हमारे बाह्य जीवन को शक्ति प्राप्त होगी। हमारा अन्तर हमारे कर्मों के लिए प्रेरक सिद्ध होगा और हमारे कर्म हमारे अन्तर को जागृत रखने में सहायक होंगे और हम एक ऐसे चरित्र के मालिक होंगे जिस पर भरोसा किया जा सकता है। अन्तर के सहगामी होने के कारण यह चरित्र कोई शुष्क चरित्र न होगा। इसमें रस भी होगा और सौंदर्य भी होगा। फिर इससे बढ़कर संसार की कोई चीज़ भी सुंदर नहीं हो सकती। संसार की कोई दूसरी चीज़ इस सौंदर्य का मुक़ाबला नहीं कर सकती। इसमें जो सुबास होगा, वह फूलों के सुबास से कहीं बढ़कर होगा। हमें अपने चरित्र से वह सुरूर और मुग्धता प्राप्त होगी जो किसी प्रकार की मदिरा से प्राप्त नहीं होती।

चरित्र ही हमारी मूल सम्पदा है और चरित्र ही से हमारा परिचय होता है। हमारे चरित्र का मूलस्रोत स्वयं ईश्वर और उसकी अनुकम्पा है। वही हमारे अन्तर और स्वभाव का निर्माता है। चरित्र-निर्माण के पश्चात् जो कार्य हमें करना है वह यह है कि हम अपने मूलस्रोत से निरन्तर जुड़े रहें। ईश्वर से हमारे इस सम्पर्क में कोई व्यवधान उत्पन्न न होने पाए। इस सम्पर्क की निरन्तरता बनी रहे। इस निरन्तरता की आवश्यकता दो पहलुओं से है। इसका एक पहलू तो यह है कि इससे चरित्र-निर्माण की यह साधना जीवन्त रहेगी और उसमें विकार न आ सकेगा। और इसका दूसरा पहलू, जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है, यह है कि इस तरह हमारी आत्मिक अभिलाषा भी पूरी होती रहेगी, अर्थात् हम बराबर ईश्वर के सम्पर्क में रहेंगे और उससे विलग न होंगे। उसके सामीप्य का रसास्वादन करते रहेंगे। इस रसास्वादन का अभाव जीवन का सबसे बड़ा अभाव है। ईश्वर की ओर बराबर रुजू करके और उसकी ओर उन्मुख होकर हम अपने आप इस रिक्तता और अभाव से अपने को बचाने में समर्थ हो सकेंगे।

❖❖❖

26

आर्य सत्य

(1) प्रत्यक्ष में परोक्ष को देखना
(2) वर्तमान में भविष्य को देखना
(3) नश्वर के माध्यम से अमरत्व का सन्देश

साधारणतया जिन आर्यसत्यों का वर्णन किया जाता है उनमें से एक है अनेकता में एकता की बात। जगत् में हमें नाना प्रकार की चीज़ें दिखाई देती हैं। एक तरफ़ ऊँची पहाड़ियाँ हैं तो दूसरी तरफ़ विस्तृत सागर लहरें ले रहा है। कहीं विभिन्न प्रकार के पक्षी चहचहाते हुए दिखाई देते हैं तो कहीं विभिन्न रंगरूप के जानवर दिखाई देते हैं। कहीं महकते हुए फूल खिल रहे होते हैं, जिनकी खुश्बू और रंग भी अलग-अलग होते हैं, किन्तु दृष्टिवान व्यक्तियों का कहना है कि इस दिखाई देनेवाली अनेकता के पीछे एक ही की क्रियाशीलता पाई जाती है। इसलिए वे न तो अनेकता से घबराते हैं और न इससे उनकी एकाग्रता में विघ्न पैदा होता है। कारण यह है कि उनकी निगाह इतनी तेज़ होती है कि वे इस सत्य को पा लेते हैं कि इस अनेकता के पीछे एकता ही काम कर रही होती है। एक ही शक्ति और एक ही इरादा है जो अपने को विभिन्न रूपों में प्रदर्शित करता है। जगत् में जिसका प्रदर्शन विभिन्न रूपों में हो रहा है, एक ही स्रष्टा है, जिसकी छवि और कला हम विभिन्न रंग-रूपों में देखते हैं। इसलिए ज्ञानवान व्यक्तियों को यह धोखा कभी नहीं होता कि वे यह समझने की ग़लती करें कि इस अनेकता के पीछे अनेक शक्तियाँ और सत्ताएँ हैं और हरेक हमें अपनी ओर आमंत्रित कर रहा है। जबकि वास्तविकता यह है कि एक ही सत्ता है, उसी का सन्देश हमें विभिन्न रूपों में मिल रहा है।

एक और आर्यसत्य, जिसका उल्लेख किया जाता है, वह है, साधारण में असाधारण को देखना। दुनिया में कोई छोटी-से-छोटी चीज़ भी वास्तव में

छोटी नहीं है। यहाँ का एक कण भी अपने में एक संसार लिए हुए होता है। उसमें भी हमें वही नियमित व्यवस्था दिखाई देती है जिसका प्रदर्शन विराट जगत् में भी हो रहा है।

फूल की पंखुड़ी साधारण नहीं है। जिनके पास दृष्टि है, वे एक पंखड़ी में पूरी पुष्पवाटिका का दर्शन कर लेते हैं। बस निगाह चाहिए अन्यथा सम्पूर्ण जगत् के प्रत्यक्ष होने पर भी उसमें उन लोगों को कोई चमत्कार दिखाई नही देता जो जागृत नहीं हैं और जिनके यहाँ अन्तःकरण का कोई मूल्य नहीं है ऐसे लोग तो असाधारण को भी साधारण ही समझते हैं। परिणाम यह होता है कि ऐसे लोगों को जगत् में कोई ऐसा संकेत नहीं मिलता जिससे उन्हें किसी शाश्वत सत्य का पता चल सके।

क़ुरआन ने इन आर्यसत्यों में कई आर्यसत्य और जोड़े हैं, जिनमें तीन विशिष्ट आर्यसत्य ये हैं–

(1) प्रत्यक्ष (Seen) में परोक्ष (Unseen) को देखना ।

(2) वर्तमान में भविष्य के दर्शन,

(3) नश्वर के माध्यम से अमरत्व का सन्देश।

क़ुरआन की दृष्टि में जगत् में चारों ओर ईश्वर की निशानियाँ बिखरी हुई हैं। क़ुरआन बताता है कि जगत् में मानव जो कुछ देखता है उसका अर्थ उतना ही नहीं होता जितना वह हमें दिखाई देता है, बल्कि वह कुछ और का भी पता देता है। इसी दृष्टि से जगत् की तमाम चीज़ों को क़ुरआन 'आयात' या निशानियाँ कहता है। मतलब यह है कि जगत् की सभी चीज़े अपने साथ कुछ और की ख़बर रखती हैं। उदाहरणार्थ यदि हमें जगत् में यह दिखाई देता है कि जगत् की सारी चीज़ें एक अनुपम व्यवस्था से जुड़ी हुई हैं और उनके अस्तित्व और उनके पारस्परिक सम्बन्धों में बड़ी सूक्ष्मदर्शिता और दूरदर्शिता पाई जाती है, जिससे मानव पूर्णतः लाभ उठाता है और उसे चहुँदिश ईश अनुकम्पा के दर्शन होते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि जगत् यह बता रहा है कि कोई दयावन्त तत्वदर्शी ईश्वर अवश्य है जिसकी अनुकम्पा की वर्षा हम पर नित्य होती रहती है। क्योंकि यह सम्भव नहीं कि तत्वदर्शिता

तो पाई जाए किन्तु कोई तत्वदर्शी न हो, अनुकम्पा तो हो किन्तु अनुकम्पाकर्ता न हो, ज्ञान तो पाया जाए मगर किसी ज्ञानवान सत्ता का अस्तित्व न हो, प्यार तो दिखाई दे लेकिन कोई प्यार करनेवाला न हो। जो कुछ प्रत्यक्ष है, वह अप्रत्यक्ष को भी प्रकट कर रहा है। हर चीज़ की उपयोगिता क्या यह नहीं बता रही है कि ये चीज़ें यूँ ही उपयोगी नहीं बन गई हैं, बल्कि इनके पीछे किसी की योजना काम कर रही है।

क़ुरआन में यह संकेत किया गया है कि किसी की अपार कृपा है, जिसके कारण हमें यह (धरती) रहने बसने के लिए मिली है। सूर्य से हमें प्रकाश और गर्मी मिल रही है। बादल से वर्षा होती है, जिससे खेतियाँ लहलहा उठती हैं। हमारे लिए नींद उतारी **गई ताकि** हमारी थकावट दूर हो, रात्रि की चादर ओढ़ाई जाती है कि हम शान्तिपूर्वक सो सकें, दिन बनाया गया कि उसकी रौशनी में हम काम कर सकें। (क़ुरआन, 78:6-16)

जगत् में पाई जानेवाली इस कल्याणकारी व्यवस्था से इस रहस्य का उद्घाटन होता है कि यह सब कुछ संयोगवश नहीं हो गया, बल्कि इसके पीछे किसी स्रष्टा और नियन्ता का हाथ है। सच्चे ज्ञानवान वही हैं। जो इस प्रत्यक्ष में सहज ही परोक्ष को देख लेते हैं।

क़ुरआन एक और आर्यसत्य से हमें अवगत कराता है और वह यह है कि वर्तमान जगत् और जीवन का अपना एक भविष्य है। सम्पूर्ण जगत् उसी भविष्य की ओर बढ़ रहा है। वर्तमान की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं। हृदय धड़कता है, अभिलाषाओं और मधुर कामनाओं का हम सपना देखते हैं। सुन्दर से सुन्दर दृश्य हमारे सामने आते हैं और हमारे अन्तःकरण में अत्यन्त सुन्दर भाव जगा जाते हैं। क्या यह सब कुछ मात्र सामयिक है या शाश्वतता से भी इनका कोई सम्पर्क है। या ऐसा है कि वर्तमान की समस्त वस्तुएँ चाहे वे कितनी ही सुन्दर और चित्ताकर्षक क्यों न हों वे सब मिट जानेवाली हैं और उनसे हमें किसी अमरत्व का संकेत नहीं मिलता। लेकिन इस निराशा का इस जगत् में कोई आधार नहीं पाया जाता। वर्तमान जगत् में जिस प्रभु-पालनकर्ता की शक्ति एवं सामर्थ्य और उसकी ओर से जिस अनुकम्पा और दानशीलता का प्रदर्शन हो रहा है, उसका किसी कृपणता और किसी

संकुचित भाव से सम्बन्ध नहीं हो सकता। यह सम्भव नहीं कि उसकी किसी योजना में शाश्वतता का भाव निहित न हो और वर्तमान केवल वर्तमान होकर रह जाए। यदि हमारे पास दृष्टि है तो अवश्य ही हम वर्तमान में उसके भविष्य के दर्शन कर सकते हैं। यह सत्य है कि यह जगत् हमारे जीवन का अन्तिम पड़ाव नहीं है। हमारी मृत्यु स्वयं यह ख़बर देती है कि हमें यहाँ से आगे जाना है। हमारी यह वर्तमान स्थिति सदैव के लिए नहीं है। हम अभी अपूर्ण हैं, परिपूर्णता ही हमारी मंज़िल हो सकती है। इसके लिए वर्तमान सहायक तो हो सकता है, किन्तु परिपूर्णता अपनी अभिव्यक्ति के लिए किसी और लोक की अपेक्षा करती है और वही इस वर्तमान का भविष्य है। इसी को क़ुरआन आख़िरत (परलोक) के नाम से याद करता है और उसे ईश-मिलन का दिन कहा है और कहा है कि सारा जगत् उस मिलन बेला का प्रत्याशी है। वर्तमान में हलचल और समस्त क्रिया-कलाप उसी के आगमन के लिए हैं। (क़ुरआन, 13:2)

क़ुरआन शिकायत करता है कि लोग साधारणतया संसार के बाह्य रूप को ही देखते हैं और आख़िरत से ग़ाफ़िल हैं। (क़ुरआन, 30:7) जबकि जगत् की योजना का मूलोद्देश्य आख़िरत (परलोक) ही है। आख़िरत वर्तमान जगत् का धड़कता हुआ दिल है। उसके आगमन की परिध्वनि कहीं से भी सुनी जा सकती है।

किसी कुएँ में जल न हो तो उसको कौन कुआँ कहेगा! किसी भवन में द्वीप न जलता हो तो वह कितना भयावह होगा! ठीक इसी प्रकार परम लक्ष्य के बिना इस जगत् का सारा बसन्त पतझड़ बनकर रह जाता है।

तीसरा आर्यसत्य जिसकी उद्घोषणा क़ुरआन ने की है, वह दूसरे आर्यसत्य का ही विशेष पहलू है। वह यह कि यहाँ की हर वस्तु नश्वर दीख पड़ती है किन्तु यह नश्वरता किसी अमरत्व की सूचक है। यह आर्यसत्य इतना स्पष्ट है कि यह स्पष्टता ही उसके लिए आवरण बन गई है, किन्तु दृष्टिवान व्यक्ति के लिए यह कोई आवरण नहीं है। वह नश्वरता में अमरत्व को देख लेता है। वह जानता है कि नश्वरता किसी शाश्वतता की सूचक हुआ करती है। नश्वरता वास्तव में एक चेतावनी है कि लोग अमरत्व की

कामना करें और अपने कर्म और चरित्र से वे अपने को इसका पात्र सिद्ध कर दिखाएँ। अमरत्व के लिए पात्रता चाहिए। अपात्र इस पद को प्राप्त नहीं कर सकता। अमरत्व की खोज और उसकी अभिलाषा जिस व्यक्ति में नहीं पाई जाती वह मनुष्य पद से नीचे गिर गया है। वह अपराधी है जो अमरत्व की अवमानना करके ईश्वरीय अनुकम्पा की उपेक्षा कर रहा है। अमरत्व मानव की नियति है, यदि वह उसे स्वीकार करे।

ईश्वर मनुष्य को अमरत्व के पद पर आसीन करना चाहता है और उसे परिपूर्णता प्रदान करना चाहता है। क़ुरआन में अमरत्व की शुभ-सूचना दी गई है कि मनुष्य को जो भी मिलेगा वह शाश्वत होगा। चाहे वे जवानी की बहारें हों या जन्नत की सुख-सामग्रियाँ हों या ईश्वर का सामीप्य। हर चीज़ भरोसे के योग्य होगी, शर्त केवल पात्रता की है। फिर तो जो जीवन मिलेगा वह शाश्वत होगा और उसमें जो कुछ उपलब्ध होगा वह सब शाश्वत ही होगा। ख़ुशियाँ कभी भी ग़म में परिवर्तित नहीं हो सकतीं। शाश्वत जीवन में वह सब कुछ प्राप्त होगा और सदैव के लिए प्राप्त होगा जिसकी कोई कामना करे।

❖ ❖ ❖

27

सौंदर्य

(1) रूप-रंग, गंध, वाक् आदि

(2) भाव

(3) कर्म

क़ुरआन में लिखा है—

> "धरती पर जो कुछ है उसे हमने उस (धरती) के लिए सुन्दरता का कारण बनाया है, ताकि हम लोगों की परीक्षा लें कि उनमें कर्म की दृष्टि से कौन सबसे अच्छा है।"
>
> (क़ुरआन, 18:7)

क़ुरआन की इस आयत में एक गहरे तथ्य का उल्लेख हुआ है जिसकी तरफ़ साधारणतया लोगों का ध्यान नहीं जाता। इस आयत का अभिप्राय यह है कि जिस धरती में मानव को बसाया गया है, तो बसाने से पहले धरती को अत्यन्त सुन्दर बनाया गया है। धरती में जितनी चीज़ें हैं, वे केवल यही नहीं कि भौतिक दृष्टि से मानव के लिए उपयोगी हैं, बल्कि उनसे धरती को सुशोभित भी किया गया है। ये हरे-भरे मैदान, लहलहाती हुई खेतियाँ, प्रवाहित सरिताएँ, महकते हुए पुष्प, धरती में पाए जानेवाले पशु-पक्षी, जंगलों में चौकड़ियाँ भरते हिरन और वृक्षों पर चहचहाते हुए पक्षी, ये सब-के-सब हमारी धरती को सुन्दर बनाने में सहायक होते हैं। यदि यह धरती उजाड़ और चटियल मैदान होती, पहाड़ों पर हिमपात न होता, यहाँ वर्षा ऋतु और बसन्त ऋतु का आगमन न होता, न यहाँ संध्याकाल की लालिमा होती और न उषाकाल का सौंदर्य, तो यहाँ का वातावरण कितना कुरूप होता। ईश्वर ने यह पसन्द नहीं किया कि जिस धरती पर मनुष्य को बसाया जाए, वह उजाड़ और सुन्दरता से रिक्त हो। फिर ईश्वर यह कैसे पसन्द कर सकता था कि मानव को रहने-बसने के लिए जगह तो सुन्दर-से-सुन्दर दे दी जाए

किन्तु स्वयं मानव के अस्तित्व में कोई सौंदर्य न हो। मानव-जीवन में विशिष्ट सुन्दरता आती है सुन्दर कर्म से। इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए उपरोक्त आयत में कहा गया है, "ताकि हम लोगों की परीक्षा लें कि उनमें कर्म की दृष्टि से कौन सबसे अच्छा है।"

कर्म का सौंदर्य ही मानव को विशिष्टता प्रदान करता है। अपने इसी विशेष गुण के कारण मानव को ईश्वर ने विशेष अधिकार दिए हैं और अपनी इसी विशेषता के कारण वह इस योग्य हुआ कि संसार की सारी वस्तुएँ उसके वशीभूत हों और वह उन्हें उपयोग में लाए। यदि मानव इस विशेषता को खो देता है, तो न केवल यह कि वह अपने ऊपर ज़ुल्म करता है बल्कि वह हर चीज़ के सौंदर्य को अर्थहीन ठहराने का दुस्साहस करता है।

जब हम सौंदर्य के विषय में विचार करते हैं तो इसके के तीन रूप हमें दिखाई देते हैं–

1. रूप-रंग, गंध, वाक् आदि
2. भाव
3. कर्म

सबसे पहले सौंदर्य का आभास हमें रूप-रंग में होता है। हमें सुन्दरता फूलों में दिखाई देती है, आकाश के तारे भी हमें सुन्दर लगते हैं। बर्फ़ से ढकी हुई पहाड़ों की चोटियाँ हमारे दिलों को लुभाती हैं। विशेष रूप से जब सुबह को सूर्य की किरणें उनपर पड़ती हैं तो ऐसा महसूस होता है कि पर्वत की चोटियाँ सब की सब चाँदी की हो गई हैं। झरनों को देखकर कौन व्यक्ति है जो खुशी से विभोर न होगा। सत्य यह है कि प्रकृति की हर चीज़ सौंदर्य से आच्छादित है। उषा का फैला हुआ आँचल हो या संध्या को आकाश पर फैली हुई लालिमा, प्रकृति की हर चीज़ सुन्दरता बाँटती दीख पड़ती है। फूलों के सुबास और मयूर के नृत्य में सुन्दरता ही का प्रदर्शन होता है। कोकिल की आवाज़ में और झरनों के कलकल गान में भी सुन्दरता ही का अनावरण होता है। किन्तु यहाँ सुन्दरता आँखों का विषय न होकर कर्ण का विषय बन

जाती है और इसे माधुर्य का नाम दे दिया जाता है।

सत्य यह है कि सौंदर्य का मूल सम्बन्ध वास्तव में भाव और मर्मस्पर्श से होता है। इसलिए इसका सम्बन्ध सहज ही रस से स्थापित किया जा सकता है। इसी लिए सौंदर्यशास्त्र (Aesthetics) को अस्वाद का विज्ञान माना जाता है। मैंने कहा है कि सौंदर्य का वास्तविक सम्बन्ध सुन्दर भाव से है जिसकी अभिव्यक्ति विभिन्न ढंग से होती है। सौंदर्य ही है जो चिड़ियों में गान बन जाता है, तो वहीं वह फूलों में गंध और नृत्य के रूप में अपना विकास ढूँढता दिखाई देता है। रंग-रूप की दुनिया में उसकी पूर्ण अभिव्यक्ति मानव के मुखमण्डल के द्वारा होती है। इसका कारण स्पष्ट है कि मानव के मुखमण्डल से जिन उत्कृष्ट भावों की अभिव्यक्ति सम्भव है वह किसी अन्य माध्यम से सम्भव नहीं। सौंदर्य के एक भाव होने के कारण मानव अपने अन्तर की दुनिया में जिस सौंदर्य का दर्शन कर सकता है वह अवर्णनीय है। उसे व्यक्त करने के लिए शब्दकोश के सारे ही शब्द छोटे पड़ जाते हैं और वे हमारी सहायता करने में असमर्थ हो जाते हैं।

सत्य यह है कि कोई भी सुन्दर वस्तु सुन्दर इसलिए दिखाई देती है कि वह किसी न किसी सुन्दर भाव को व्यक्त कर रही होती है। वास्तविक मूल्य सुन्दर भाव का ही होता है। हमारे अन्तर में उभरनेवाले सुन्दर भाव सुन्दर अर्थ लिए होते हैं। अर्थ की सूक्ष्म मार्मिकता और सुन्दरता भाव के ही कारण होती है। प्रेम, करुणा, समर्पण, दया, ईश्वर के प्रति विनय-भाव, आत्म-निवेदन अर्थात हमारी सारी धार्मिकता अपनी गहराई में सौंदर्यपरक भाव (Aesthetic) या जमालियाती एहसास बन जाती है।

सौंदर्य की अभिव्यक्ति हमारे कर्मों, चरित्र और हमारे नित्य व्यवहार के द्वारा भी होती है और सौंदर्य की यही अभिव्यक्ति हमारे जीवन की विशुद्धता और उसकी स्वस्थता का प्रमाण होती है। नैतिक कर्म वास्तव में सौंदर्य का चेतनात्मक रूप होता है। यहाँ सौंदर्य का प्रदर्शन सीधा (Direct) होता है। दूसरे शब्दों में वास्तव में सुन्दरता का यही सही अनावरण होता है। यदि हम अपने कार्य को सौंदर्य-साधना समझ सकें तो हम ऐसे कर्मों के निकट भी नहीं जा सकते जो हमारी साधना को भंग कर देते हों, हमारे कर्मों की सुन्दरता

और हमारे चरित्रों की मोहकता हमारे सम्पूर्ण जीवन को सुन्दर बनाने में समर्थ हैं। इसी लिए क़ुरआन जीवन की सुन्दरता की जगह अच्छे और सुन्दर कर्मों की बात करता है। क्योंकि जीवन की सुन्दरता अच्छे कर्मों पर निर्भर करती है।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि सौंदर्य का वास्तविक सम्बन्ध सत्य से होता है। अतः सुन्दरता के अतिरिक्त सत्य के अन्य गुणों की झलक भी सौंदर्य में देखी जा सकती। सौंदर्य के कुछ विशिष्ट गुण ये हैं–

- सौंदर्य अपने वास्तविक अर्थों में एक अलौकिक वस्तु है जो वर्तमान लोक में अलौकिकता और अमरता का सन्देश लेकर प्रकट होता है। कीट्स ने सच कहा है–

  "A thing of beauty is a joy for ever. It will not pass into nothingness."

  "सुन्दरता से विभूषित प्रत्येक वस्तु एक शाश्वत आनन्द का पर्याय होती है, जिसका कभी अन्त नहीं होता।"

- सौंदर्य में एक गुण यह भी होता है कि वह हमारे आनन्द का विषय (Enjoyable) होता है। उससे हमें ख़ुशी हासिल होती है। सौंदर्य कभी अप्रिय नहीं होता। क़ुरआन में भी इसकी ओर संकेत किया गया है। (देखें क़ुरआन, 2:69)
- सौंदर्य का एक गुण यह भी है कि उसमें सर्वथा सन्तुलन पाया जाता है। असन्तुलित दशा उसके लिए असहनीय सिद्ध होती है।
- सौंदर्य को जीवन के अभिप्राय में भी अपनी ही खोज होती है, अर्थात् उसमें उसे भी सुन्दरता की तलाश होती है। जीवन का अभिप्राय और उसका अर्थ अगर सुन्दर न हो तो यह एक ऐसा अवगुण होगा जिसके कारण सम्पूर्ण जीवन ही निरर्थक होकर रह जाएगा।

कुरआन में कहा गया है कि यह सत्य की अपेक्षा थी कि मानव को रूप प्रदान किया जाए, तो वह रूप सुन्दर ही नहीं सुन्दरतम हो। फिर इसके साथ ही मानव को यह शिक्षा दी गई कि वह सत्कर्म के द्वारा अपने जीवन को सुन्दरता प्रदान करे। ईश्वर ने मानव जीवन की यात्रा की जो मंज़िल निश्चित की है उससे बढ़कर सौंदर्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती। (64:3)

❖ ❖ ❖

28

निधियाँ

(1) बाह्य (External)
(2) आन्तरिक (Internal)
(3) प्रतीक्षित (Awaited)

मनुष्य को कई प्रकार की जीवन-सामग्री और निधियाँ प्राप्त हैं। इस पहलू से देखें तो मनुष्य ईश्वर की अनुकम्पाओं से ढका हुआ है। मानव के लिए जो निधियाँ सुनिश्चित हैं वे मूलतः तीन प्रकर की हैं।

(1) बाह्य (External)

(2) आन्तरिक (Internal)

(3) प्रतीक्षित (Awaited)

बाह्य रूप से मानव के लिए जो निधियाँ उपलब्ध हैं, उनमें बड़ी विविधता पाई जाती है। रहने-सहने के लिए मानव को एक विशाल धरती दी गई है। हवाएँ उसके लिए चलती हैं, वर्षा उसके लिए होती है, खेतियों और फलों से वह लाभ उठाता है, सूरज, चाँद और तारे उसके लिए चमकते हैं, ईश्वर ने उसकी दिलचस्पी के लिए जो चीज़ भी बनाई उसे सुन्दरता भी प्रदान की है। यह कितना मनोहर दृश्य है कि कहीं नदियाँ बह रही हैं, कहीं फूल खिल रहे हैं और कहीं चिड़ियाँ चहचहा रही हैं। कहीं सूरज उदय होने का दृश्य है तो कहीं उसके अस्त होने का।

स्वयं मानव का शरीर भी उसके लिए कितना बड़ा उपहार है, इसे हर विवेकशील व्यक्ति समझ सकता है। मनुष्य के शरीर की सुन्दरता और उसका स्वास्थ्य बना रहे इसके लिए प्रकृति संकेत करती है कि मनुष्य प्राकृतिक नियमों का पालन करे। साँस ले तो स्वच्छ वायु में ले, भोजन स्वास्थ्यप्रद हो, पेयजल ठण्डा ही नहीं विमल भी हो। शरीर को स्वस्थ रखने

के लिए यह भी आवश्यक है कि उसे विश्राम का अवसर भी प्राप्त हो। नींद में उसे वह आराम मिलता है कि जागने पर ताज़गी महसूस करता है, उसकी थकावट दूर हो जाती है और वह फिर कुछ करने की स्थिति में होता है।

मनुष्य के लिए मानव समाज भी ईश्वर का एक वरदान है। समाज और परिवार व्यवस्था न हो तो कोई बच्चा कैसे पल सकता है और वह कैसे जवान हो सकता है। बच्चा दूध ही से नहीं, दूध से ज़्यादा वह माँ-बाप के प्यार के द्वारा पलता है। यह प्यार उसके लिए किसी भौतिक आहार से कम नहीं है। बड़े होने को बाद आदमी को सहचर की तलाश होती है, उसे संगी-साथी चाहिए। समाज में इस सबकी व्यवस्था मौजूद है।

अब तक जो कुछ बयान किया गया, वह ऐसा ईश्वरीय उपकार है और उसका ऐसा अनुग्रह है जिसका सम्बन्ध व्यक्ति के बाह्य जीवन से है उपरोक्त ये सारी चीज़ें हमारी बाह्य निधियों में सम्मिलित हैं।

इसके बाद आप विचार करें तो देखेंगे कि मनुष्य केवल इन बाह्य निधियों ही से सन्तुष्ट नहीं हो सकता, उसे इनके अतिरिक्त कुछ और भी चाहिए। कुछ और की भी उसके लिए व्यवस्था की गई है, जिसका सम्बन्ध मनुष्य के अन्तर से है। भौतिक वस्तुओं के अतिरिक्त मनुष्य के सीने में दिल भी रखा गया है, जो दृश्य और अदृश्य लोक के मध्य सेतु का काम करता है।

यह दिल क्या है? यह आन्तरिक निधियों का ख़ज़ाना है, दिल की दुनिया अत्यन्त आकर्षक और अत्यन्त विस्तृत है। दिल की दुनिया वह है जहाँ—

बिन दामिनी उजियार अति।
बिन घन पड़े फुहार।।

उसमें वह कुछ भी है जो हमें बाहर दिखाई देता है और उसमें इससे बढ़कर ऐसी चीज़ों की सम्भावनाएँ हैं जो मनुष्य को अपेक्षित हों। उदाहरणार्थ— प्रेम की भावना, किसी प्रिय के साथ आन्तरिक सहवास की कामना और किसी प्रीतम के प्रति पूर्ण समर्पण इत्यादि। हृदय का व्यापार अत्यन्त सूक्ष्म

होता है, जिससे साधारणतया लोग परिचित नहीं हैं। हृदय के सूक्ष्म व्यापार में वह सब कुछ सम्मिलित है जो व्यक्ति को वास्तव में समृद्ध बना देता है, जिसके द्वारा असम्भव भी सम्भव दीख पड़ता है। इसके द्वारा प्रभु से वह सान्निध्य प्राप्त होता है जिसकी कल्पना सामान्य अवस्था में नहीं की जा सकती। यह दिल आशाएँ जगाता है और हमें इससे अवगत कराता है कि हम मात्र शरीर ही नहीं हैं, बल्कि वास्तव में हम कुछ और हैं। आप चाहे उसे आत्मा कहें या अच्छा-सा कोई नाम दे लें। आत्मा को जो कुछ अपेक्षित है उसकी व्यवस्था के बिना मात्र भौतिक सुख से आदमी की बेचैनी दूर नहीं हो सकती।

सत्य यह है कि शारीरिक सौंदर्य का मूल कारण भी आत्मा ही है। हमारा व्यक्तित्व आत्मा से ही निर्मित होता है, आत्मा ही वह परम निधि है जिसके द्वारा बाह्य निधियों में अर्थवत्ता दिखाई देती है, अन्यथा सब कुछ निरर्थक होकर रह जाए। अपने बाह्य से अधिक हमें अपने अन्तर को मूल्यवान बनाने की आवश्यकता है। अपने बाह्य से अधिक हमें अपने अन्तर को रौशन करने की आवश्यकता है। बाह्य से ज़्यादा हमें अपने अन्तर के सौंदर्य का पता होना चाहिए। बाह्य निधियों की अपेक्षा हमें अपनी आन्तरिक निधियों के प्रति ईश्वर का आभारी होना चाहिए।

यह ईश्वर की अनुकम्पा है कि भौतिक वस्तुओं के साथ उसने हमें आन्तरिक निधियों से परिचित कराया। शरीर की भूख-प्यास तो ठण्डे पानी और भोजन से मिलती है, किन्तु आत्मा की भूख और तृष्णा उस प्रिय को पाकर शान्त होती है जो हमारा प्रभु और रक्षक भी है। उसे पा लेने की कामना से ही हमें विशिष्टता प्राप्त हो सकती है और हर प्रकार के भय से हम मुक्त हो जाते हैं जीवन में आशा की किरणें उतरने लगती हैं और जीवन में हज़ार चाँद लग जाते हैं। यही वह निधि है जो ख़ुशी बनकर व्यक्त होती है, प्रकाश बनकर जगमगाती है, ईश-स्तुति और प्रार्थना के रूप में क़ीमती भावों को व्यक्त करती है और आदमी पुकार उठता है :

> "ऐ हमारे रब! हमारे प्रकाश को तू हमारे लिए परिपूर्णता प्रदान कर।" (क़ुरआन, 66:8)

तीसरे प्रकार की निधि वह है जिसे हम प्रतीक्षित (Awaited) निधि कहते हैं। यह वह निधि है जो अपने समय पर उपलब्ध होगी। मनुष्य के लिए अभी पाने के लिए बहुत कुछ है। और यूँ तो सब कुछ पाने के पश्चात भी पाना सदैव शेष रहेगा। प्रतीक्षित निधि वह निधि है जिससे हमारा भविष्य निर्मित होगा। वह अपेक्षित निधि क्या है? यह वह निधि है जिसका सम्बन्ध परलोक से है। जहाँ वह सब कुछ है जिसकी हम कल्पना करने में भी असमर्थ हैं। जहाँ कामनाओं की भी कामना पूरी होगी। वहाँ वे नेमतें भी हैं जिनको अभी तक किसी ने देखा नहीं है और न उनकी कल्पना की है। पारलौकिक जगत् यूँ तो हमारे लिए एक रहस्यमय जगत है किन्तु फिर भी कुछ चीज़ों की ओर संकेत किया जा सकता है, उनमें सबसे बड़ी चीज़ ईश्वर का साक्षात्कार और उसके साथ मधुर वार्तालाप है। इसके अतिरिक्त मनुष्य को वहाँ वह जीवन उपलब्ध होगा अमरत्व जिसका विशेष गुण है। ऐसा जीवन जिसमें कलह नहीं, भय नहीं, शोक नहीं। जहाँ खुशियाँ ही खुशियाँ खेलती दिखाई देंगी। यदि कोई हमारा भविष्य है— और निश्चय ही हमारा भविष्य है— तो ये निधियाँ ही हमारे भविष्य को चित्रित करती हैं। भविष्य वास्तव में वर्तमान से जुड़ा हुआ उसका अनिवार्य अंश होता है। इसलिए हमारी प्रतीक्षित निधियाँ भी हमें उन निधियों से अधिक धनवान बनाती हैं जो वर्तमान हमें प्राप्त है। प्रतीक्षित निधियों पर वर्तमान निधियों की तरह बल्कि इनसे बढ़कर यदि हमारा विश्वास न हो तो निराशा की एक ऐसी गर्म लपट हमें घेर लेगी जिसमें सब कुछ जलकर ख़ाक हो जाएगा और दिल की दुनिया से जो संकेत हमें मिलते रहे हैं वे सब झूठ सिद्ध होंगे, और यह सम्भव नहीं। क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाण को झुठलाया नहीं जा सकता।

❖❖❖

29

हास्य-विनोद : महत्व और सीमाएँ

(1) विनोद और मानव-जीवन
(2) विनोद की उपयोगिता
(3) मर्यादित विनोद

आमोद-प्रमोद और हँसी-मज़ाक़ मनुष्य की सूक्ष्म बुद्धिमत्ता और उसकी प्रकृति की सूक्ष्मता के गुणों में से है। सुशीलता इनसान के ज़िन्दा दिल होने का एक विशेष लक्षण है। शुष्क और मुर्दादिल व्यक्ति जिस महफ़िल या सभा में पहुँचेगा उसे उदास करके रहेगा। ऐसा व्यक्ति जीवन की उच्चतम सच्चाइयों और जीवन के रहस्यों से अनभिज्ञ होता है। इसलिए कि जीवन के बहुत-से रहस्य ऐसे हैं जिनसे परिचित होने के लिए संवेदनशील होना आवश्यक होता है। ऐसा व्यक्ति जिसे वाटिका में सूखे पत्ते ही दिखाई देते हों वह बाग़ की सुन्दरता को कदापि नहीं जान सकता। बाग़ में महकते हुए सुन्दर फूल भी होते हैं, गुनगुनाते हुए भँवरे और चहकते हुए पक्षी भी होते हैं, किन्तु अपनी विशिष्ट मनोवृत्ति के कारण उसे बाग़ का सौंदर्य दिखाई नहीं देता और न फूल की खुशबुओं के झोंके उसके मन को छूते हैं। उसकी नकारात्मक मनोवृत्ति उसे प्रकृति का सहभागी बनने में बाधक होती है।

यदि किसी व्यक्ति के यहाँ हँसी-खुशी और विनोद-प्रमोद का नितान्त अभाव पाया जाता है तो फिर उससे कोई बड़ी आशा नहीं की जा सकती। इसलिए कि उन्नति और आशाओं का सम्पर्क सदैव ज़िन्दादिली और उत्साह से हुआ करता है। शुष्क तबीअत का इनसान ईश्वर की बहुत-सी सूक्ष्म अनुकम्पाओं और प्रेम संकेतों को पकड़ने में असमर्थ रहता है, सारांश यह कि आमोद-प्रमोद और हँसी-मज़ाक़ का मानव-जीवन में बड़ा महत्व है, किन्तु हँसी मज़ाक़ और आमोद-प्रमोद के लिए अनिवार्य है कि सभ्यता की परिधि से बाहर न हो और सभ्य होने के साथ उसमें सन्तुलन भी पाया जाता

हो। हँसी-मज़ाक़ और आमोद-प्रमोद के बाहुल्य के कारण व्यक्ति से उसकी गरिमा छिन जाती है। अतः इस सिलसिले में आदमी को बहुत सतर्क रहना चाहिए। सब्ज़ी में नमक का होना ज़रूरी है, किन्तु यदि नमक बहुत ज़्यादा डाल दिया जाए तो सब्ज़ी ज़हर होकर रह जाएगी, कोई उसे खा नहीं सकेगा। इसलिए जहाँ ज़रूरी है कि आदमी को आमोद-प्रमोद से दिलचस्पी हो वहीं यह भी आवश्यक है कि उसकी यह दिलचस्पी मर्यादित हो। स्वयं नबी (सल्ल॰) ने भी कभी-कभी विनोद किया है, हालाँकि आपपर पैग़म्बरी की बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी का बोझ था। एक अवसर पर आप ने एक बूढ़ी स्त्री से कहा कि बूढ़ी स्त्रियाँ जन्नत में नहीं जाएँगी तो वह बुढ़िया घबरा गई, आप ने कहा, "बूढ़ी औरतें जब जन्नत में जाएँगी, उस समय वे जवान कर दी जाएँगी" यानी बूढ़ी न रहेंगी, यह बात सुनकर वह बुढ़िया प्रसन्न हो गई। इसी प्रकार एक बार एक व्यक्ति ने आप से सवारी के लिए ऊँट माँगा। आप (सल्ल॰) ने कहा, "हम तुम्हें ऊँट का बच्चा देंगे।" इस पर उस व्यक्ति ने कहा, "हम ऊँट का बच्चा लेकर क्या करेंगे, हमें तो सवारी के लिए ऊँट चाहिए।" आप (सल्ल॰) ने कहा, "क्या कोई ऐसा भी ऊँट है जो ऊँट का बच्चा न हो?"

यह आप (सल्ल॰) का विनोद था, एक सभ्य विनोद, जिसमें झूठ का समावेश नहीं पाया जाता।

लोगों को अपने से क़रीब करने या निकट लाने और उनसे हिल-मिलकर रहने के लिए भी आमोद-प्रमोद उत्तम उपाय है। अल्लामा इक़बाल केवल एक कवि ही न थे, बल्कि एक दार्शनिक एवं चिन्तक भी थे, फिर उन्हें एक दर्द भरा दिल भी मिला था। वे इस्लाम की उन्नति और मुस्लिम समुदाय की तरक़्क़ी के लिए चिन्तित रहा करते थे, किन्तु वे ख़ुश्क मिज़ाज और शुष्क प्रवृत्ति के न थे। उनके यहाँ भी हँसी-मज़ाक़ और विनोद की बातें हुआ करती थीं। अल्लामा को उनके विचार और दर्शन ने ख़ुश्क मिज़ाज नहीं बनाया और न इससे उनकी ज़िन्दादिली को कोई आघात पहुँचा।

यूरोप में एक सुप्रसिद्ध महिला ने एक बार अल्लामा को अपने घर पर खाने पर आमन्त्रित किया। उस महिला का मकान इतना सुन्दर और

सुसज्जित था कि लगता था कि जैसे वह ख़लीफ़ा हारून रशीद का महल हो। बातचीत में महिला ने अल्लामा से अपने मकान के विषय में पूछा कि यह कैसा है? अल्लामा ने कहा कि तुमने तो दुनिया ही में अपनी जन्नत बना रखी है, मैं तो अपनी जन्नत की प्रतीक्षा में हूँ। अल्लामा के इस वाक्य से यह बात ज़ाहिर होती है कि अल्लामा की दृष्टि में उस महिला का भवन सुन्दर और आकर्षक था। महिला यह चाहती थी कि अल्लामा के मुख से अपने भवन के प्रति प्रशंसा के शब्द सुने। अल्लामा ने उसकी इच्छा भी पूरी कर दी और इसके साथ उसे यह संकेत भी दे दिया कि यदि किसी ने दुनिया में अपनी जन्नत बना ली और आनेवाले शाश्वत जीवन में उसे जन्नत न मिली तो वह घाटे ही में रहेगा। बुद्धिमान व्यक्ति वही है जिसे परलोक में मिलने वाली जन्नत का इन्तिज़ार हो।

एक बार ऐसा हुआ कि अल्लामा से एक व्यक्ति के बारे में किसी ने कहा कि ये नास्तिक हैं। इन्हें ईश्वर पर विश्वास नहीं है, आप इन्हें समझाएँ। अल्लामा ने कहा, "जिसे ईश्वर न समझा सका, उसे मैं क्या समझा सकता हूँ।"

अल्लामा का यह वाक्य बड़ा ही अर्थपूर्ण, मार्मिक और चुभता हुआ है जो हृदय को जागृत करने के लिए पर्याप्त है। अल्लामा कहना यह चाहते हैं कि ईश्वर में विश्वास उसी को प्राप्त होता है और ईमान की दौलत उसी व्यक्ति को मिला करती है जिसे ईश्वर यह दौलत देना चाहता है। अल्लाह की तौफ़ीक़ के बिना यह श्रेय प्राप्त नहीं हुआ करता और विश्वसनीय चीज़ भी वही होती है जो ईश्वर प्रदत्त हो।

उपर्युक्त बातों से यह भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है कि सभ्य विनोद और फक्कड़पन में बड़ा ही अन्तर है। जीवन में उसी विनोद के लिए गुंजाइश है जो सभ्य हो और सत्य के विरुद्ध न हो तथा जीवन के लिए उपयोगी भी हो।

❖❖❖

30

भक्ति : कुछ महत्वपूर्ण पहलू

(1) विश्वास

(2) प्रेम और आकांक्षा

(3) सेवा

भक्ति को अरबी में 'उबूदियत' कहते हैं, अर्थात किसी का बन्दा बन जाना। इसी लिए 'उबूदियत' को बन्दगी से भी अभिव्यंजित करते हैं। बन्दगी या भक्ति के विषय में सबसे पहले यह प्रश्न उठता है कि भक्ति किसकी करनी चाहिए। अर्थात किसे यह अधिकार प्राप्त है कि उसी की भक्ति की जाए और लोगों के लिए क्यों अनिवार्य है कि वे भक्ति का मार्ग ग्रहण करें और भक्ति ही को अपने जीवन का मौलिक उद्देश्य जानें?

इस सिलसिले में यह भी जानना ज़रूरी है कि भक्ति के कितने पहलू और पक्ष होते हैं? भक्ति का मार्ग अपनाने में इन्हें ध्यान में रखना आवश्यक होता है। भक्ति या बन्दगी किसकी की जाए, इस सम्बन्ध में क़ुरआन ने हमारा मार्गदर्शन किया है और उसने मानवों को सम्बोधित करते हुए कहा है, "ऐ लोगो, अपने रब की बन्दगी करो जिसने तुम्हें और तुमसे पहले के लोगों को पैदा किया है ताकि तुम बच सको।" (क़ुरआन, 2:21) आगे चलकर क़ुरआन ने यह भी बताया है कि ईश्वर ने ही मानवों के लिए धरती बनाई है और आकाश की छत उसी ने क़ायम की है और धरती से मानवों के लिए फल और खाद्य-पदार्थ उसी ने निकाले और फिर यह भी बताया है कि मनुष्यों के लिए अमर जीवन की योजना उसी ने बनाई है किन्तु सुखमय अमर जीवन उन्हीं लोगों को प्राप्त होगा जो वास्तव में ईश्वर की बन्दगी या भक्ति का मार्ग ग्रहण करेंगे। और जो लोग ईश्वर की योजना के विरुद्ध नीति अपनाएँगे वे उसके प्रकोप के भागी होंगे और दुखमय यातना ही उनका भाग्य बनकर रहेगा।

क़ुरआन के इस बयान से यह स्पष्ट हो जाता है कि ईश्वर ही को यह अधिकार प्राप्त है कि उसकी बन्दगी की जाए। इसलिए कि हमारा स्रष्टा वही है और न केवल यह कि उसने हमें पैदा किया बल्कि जीवन सम्बन्धी अपेक्षाओं एवं आवश्यकताओं की पूर्ति भी वही करता है और करेगा। मानव जीवन का स्वभाव यह है कि वह वर्तमान पर सन्तुष्ट नहीं। उसके लिए कोई सुन्दरतम और सुखमय भविष्य भी चाहिए जो सामान्य लोगों के लिए तो स्वप्नों का संसार प्रतीत होगा किन्तु तत्वदर्शियों के लिए वह स्वप्निल संसार ही जीवन की व्याख्या करने में समर्थ हो सकता है। वर्तमान संसार और लौकिक जीवन भी किसी सुन्दर स्वप्न से कम नहीं है किन्तु अभ्यस्त होने के कारण हम इस विस्मयकारी जगत् के मार्मिक पहलू को देख नहीं पाते और स्वप्नों की दुनिया हमें इसकी अपेक्षा अधिक सुन्दर मालूम होती है। जिस ईश्वर की ऐसी कृपा-दृष्टि हमपर है उसके प्रति अपने कर्तव्यों को नकारना किसी बड़े अपराध से कम नहीं। क़ुरआन से यह मालूम होता है कि भक्ति या बन्दगी के मार्ग को त्यागने से केवल यही नहीं कि मनुष्य उन समस्त उपलब्धियों से वंचित रहता है जो उसकी प्रतीक्षा कर रही हैं, बल्कि मनुष्य चरित्र, भावना और कामनाओं की दृष्टि से भी पतित होकर रहता है। दूसरे शब्दों में चरित्रवान होने के लिए भी अनिवार्य है कि मनुष्य ईश्वर का बन्दा और दास बनकर जीवन व्यतीत करे। अमर जीवन का अधिकारी वह केवल तभी हो सकता है जब उसका जीवन ईश्वरीय आदेशों के अन्तर्गत व्यतीत हो। अब हमें इसपर विचार करना है कि भक्ति या उबूदियत के कौन-कौन से महत्त्वपूर्ण पहलू (Aspects) हैं जिन्हें ध्यान में रखना आवश्यक है।

1: विश्वास :

बन्दगी और भक्ति के लिए आवश्यक है कि एक ईश्वर में हमारा पूर्ण विश्वास हो और इसके लिए यह भी आवश्यक है कि ईश्वर ने अपनी किताब (क़ुरआन) में जो कुछ भी कहा है उसमें हमें किसी प्रकार का सन्देह न हो। विश्वास के बिना बन्दगी की राह में एक क़दम भी नहीं चला जा सकता। विश्वास के बिना हम जो भी धार्मिक कर्म करेंगे वह मात्र दिखावा और ढोंग होगा जिसका चरित्र के आदर्श रूप से दूर का भी सम्बन्ध नहीं हो सकता। विश्वास ही वह शक्ति है जिसके द्वारा मनुष्य

बड़ी-से-बड़ी ऊँचाइयों को छू सकता है और त्याग व उत्सर्ग का ऐसा उदाहरण पेश कर सकता है कि लोग चकित होकर रह जाएँ। यह विश्वास ही की शक्ति थी कि हज़रत इबराहीम (अलै.) अपने इकलौते बेटे हज़रत इसमाईल (अलै.) की बलि देने को सहर्ष तैयार हो गए। और यह भी विश्वास ही की शक्ति थी कि हज़रत इसमाईल इसके लिए स्वेच्छापूर्वक तैयार हो गए कि उनकी बलि दे दी जाए। यदि ईश्वर की प्रसन्नता किसी कार्य में हो तो उसे अंजाम देने में तनिक भी संकोच नहीं होना चाहिए। विश्वास के बिना किसी प्रकार भक्ति की कल्पना नहीं जा सकती। ध्यान रहे, ईश्वर में विश्वास का अर्थ यह होता है कि मनुष्य न केवल ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार कर रहा है बल्कि वह ईश्वर की महानता, उसकी महिमा और उसकी शक्ति को भी स्वीकार कर रहा है। वह ईश्वर की बड़ाई के आगे झुक रहा है और उसका हृदय ईश्वर के प्रति आदर-भाव से भर गया है।

2. प्रेम और आकांक्षा

बन्दगी या भक्ति कोई शुष्क चीज़ नहीं है, बल्कि भक्ति का महत्वपूर्ण पहलू प्रेम एवं कामना है। भक्ति वास्तव में मानव की ऐसी स्वाभाविक वृत्ति है जो प्रेम भाव से भिन्न नहीं। यह उसकी आन्तरिक आकांक्षा है इसलिए बन्दगी एवं उपासना या भक्ति के बिना उसे परितोष प्राप्त नहीं हो सकता। प्रेमभाव या भक्ति से वंचित रहकर मानव की जो दशा होती है उसकी उपमा उजाड़ या मरुभूमि से दे सकते हैं। सच्ची बात यह है कि भक्तिभाव ही जीवन का वास्तविक रस है। जीवन के रसास्वादन के लिए भक्तिभाव का पाया जाना अनिवार्य है।

3. सेवा

बन्दगी और भक्ति का तीसरा अंग और परिणति है 'सेवा'। बन्दगी के लिए आवश्यक है कि मनुष्य ने जिसकी बन्दगी स्वीकार की है वह उसके आदेशों का पालन करे और उन चीज़ों से बचे जिनको ईश्वर पसन्द नहीं करता। जिन कामों को ईश्वर पसन्द करता है वही सुकर्म हैं और बुरे काम वही हैं जिन्हें ईश्वर ने बुरा कहा है। क़ुरआन में जगह-जगह ईमान के साथ अच्छे कर्मों का उल्लेख किया गया है। उन अच्छे कर्मों से अभिप्रेत वही कर्म

हैं जिनको ईश्वर पसन्द करता है। कर्म का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इसमें व्यक्तिगत कर्म के अतिरिक्त वे सारे कर्म भी आ जाते हैं जिनका सम्बन्ध, समाज, अर्थ और राजनीति आदि से होता है।

जब कोई व्यक्ति ईश्वर के प्रति समर्पित हो जाता है तो वह सफलता को पा लेता है। उसके सफल होने में कोई सन्देह शेष नहीं रहता। समर्पण के पश्चात् यदि उसकी मृत्यु हो जाए और उसे जीवन में कुछ कर दिखाने का अवसर न मिले तब भी वह पूर्णकाम समझा जाएगा और उसके सफल होने में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता। किन्तु समर्पण के पश्चात् यदि किसी को दुनिया में जीने का अवसर मिलता है तो इसका अर्थ यह होता है कि ईश्वर संसार में उससे कुछ सेवाकार्य लेना चाहता है। अब यदि कोई समर्पित होने के पश्चात् सेवाकार्य से भागता और उसकी उपेक्षा करता है तो कहा जाएगा कि वास्तव में ईश्वर के प्रति अभी वह समर्पित हुआ ही नहीं। समर्पण में तो मनुष्य की दशा ऐसी होती है जैसे वह किसी के हाथ बिक गया हो।

❖❖❖

31

क्या खोया जिसका एहसास नहीं

(1) ईशज्ञान

(2) आन्तरिक सौंदर्य

(3) कर्मों की पवित्रता

(1) ईशज्ञान

मानव जीवन में ऐसा होता रहता है कि मनुष्य बहुमूल्य चीज़ों से वंचित होने के पश्चात् भी यह महसूस नहीं करता कि उससे कोई चीज़ खो गई है। अगर एहसास हो तो खोई हुई चीज़ दोबारा पाने की वह कोशिश कर सकता है। एहसास न होने के कारण वह जैसी भी हो अपनी हालत पर सन्तुष्ट हो जाता है, फिर उसे कोई परेशानी नहीं होती। वह बड़े मज़े से जीवन व्यतीत करता है। घाटे और हानि का एहसास न होने का अर्थ यह है कि उसे यह ख़बर नहीं होती कि उसके जीवन में किसी बड़ी उपलब्धि का अभाव पाया जाता है और उसका जीवन मात्र घाटे का जीवन होकर रह गया है।

ईश्वर हमें घाटा उठाने के लिए तो जीवन दे नहीं सकता। यह हमारी ग़लती होगी कि हम जीवन के महत्त्व को और जिसके कारण उसे यह महत्त्व प्राप्त है, उसे समझने का प्रयास न करें। जीवन में जिसके कारण चार चाँद लग जाते हैं और वह मूल्यवान हो जाता है और जिसके कारण जीवन के बाग़ में सुबासित फूल खिलते हैं और जिसके कारण जीवन में हरियाली आती है और जीवन मरुभूमि बनने से सुरक्षित रहता है, जिसके कारण जीवन में बसन्त आता है और हर ओर मस्ती दीख पड़ती है, वह मूल कारण है—ईश्वर का ज्ञान और अपने जीवन में उसकी प्रतीति और प्रेम।

जाननेवाले जानते हैं कि धरती की हरियाली का कारण वह सागर है

जिसका जल बादल बनकर उसपर बरसता है। इससे शुष्क भूमि में जान पड़ जाती है। जहाँ कल धूल उड़ रही थी वहाँ हरियाली हो जाती है। मनुष्य यदि जल-बिन्दु के समान है तो उसका कोई सागर भी होगा। और यदि वह प्रकाश-किरण के सदृश है तो उसका कोई उद्‌गम होगा। सत्य यह है कि जीवन और जगत् का स्रष्टा जगत् सखा ईश्वर है। उसकी सृष्टि से उसकी महिमा और सौंदर्य की अभिव्यक्ति होती है। धरती पर भी कहने को तो बादल बरसते हैं, किन्तु वास्तव में वह ईश्वर की अनुकम्पा है जो बादल बनकर बरस रही होती है। कहने को तो चमन में कलियाँ मुस्कुराती हैं लेकिन इस मुस्कुराहट में किसी और की मुस्कुराहट होती है। बसन्त ऋतु आती है, सबको मदमस्त कर जाती है, किन्तु यह किसी जगत्-सखा का प्रेम होता है जो मधुमास के द्वारा हम तक पहुँचता है। सन्देश यह होता है कि जीवन का प्रांगड़ इसलिए नहीं है कि उसमें निराशा खेल रही हो और उसमें किसी चाँदनी के उतरने की अनुमति न हो। जीवन किसी शाश्वत सौंदर्य और आनन्द की सम्भावना से रिक्त है तो फिर सारी बहारें और बसन्त मानव के लिए किसी अभिशाप से कम नहीं हैं, यह दूसरी बात है कि जड़-बुद्धि के लोग इसे महसूस न करें।

मानव को तृप्ति और सच्ची शान्ति भौतिक वस्तुओं से प्राप्त नहीं हो सकती क्योंकि वह मात्र शरीर नहीं, शरीर से आगे की चीज़ है। उसकी आत्मिक भूख भी है। उसकी आत्मा को भी कोई सहचर और प्रीतम चाहिए। इसके बिना उसका अधूरापन दूर नहीं हो सकता। उसके जीवन में एक रिक्तता और एक कमी हमेशा महसूस होती रहेगी। फिर यही नहीं कि उसकी आन्तरिक कामनाओं और उमंगों का कोई अर्थ न होगा, बल्कि फूलों और कलियों का सौंदर्य भी अपना अर्थ खो देगा। तारों की सजावट भी निरर्थक मालूम होगी। मानव की आन्तरिक उमंगों और अभिलाषाओं को जिस पनाहगाह की तलाश है और उसका प्रेम जिस बाहुपाश और अंक का अभिलाषी है, जिसके प्रति समर्पित हो जाना उसका स्वभाव है। व्यक्ति की आत्मिक आवश्यकताएँ उसी वक़्त पूरी हो सकती हैं और वास्तविक आनन्द उसी समय प्राप्त हो सकता है जबकि वह ईश्वर को अपने जीवन में सम्मिलित करे और यह ईशज्ञान के बिना सम्भव नहीं है। मनुष्य कुछ भी हो

जाए और कितना ही धन क्यों न एकत्र कर ले किन्तु उसका दारिद्रय जा नहीं सकता जब तक कि उसका सम्बन्ध ईश्वर से स्थापित न हो जाए।

(2) आन्तरिक सौंदर्य

दूसरी चीज़ जो लोगों ने साधारणतया खो दी है, वह है अपने भीतर की सुन्दरता। हम भौतिक वस्तुओं के इतना निकट होते गए कि स्वयं हमारे अन्दर जड़ता आ गई। अपने भीतर की कोमलता की रक्षा करने में हम असमर्थ रहे। हमारी जड़ता बढ़ती गई, और यह स्वाभाविक भी था। हम जड़ होकर रह गए। मृदुलता और अन्तर की कोमलता ने जिन परम्पराओं को जन्म दिया था, उन परम्पराओं की हम कितनी ही रक्षा क्यों न करें किन्तु इससे कुछ होने का नहीं। हम पूजा करें, नमाज़ें पढ़ते रहें लेकिन यह पूजा और नमाज़ जिस चीज़ की परिचायक हैं, जब तक वह चीज़ हमारे अन्दर पैदा नहीं होती, हमारी नमाज़ और पूजा मात्र एक रस्मी चीज़ बनकर रहेगी। यह हमारे अन्तर का उद्वेलन सिद्ध नहीं हो सकती। हमें अपनी जड़ता को त्यागना होगा और अपने अन्दर मौलिक परिवर्तन लाना होगा। केवल भौतिक दृष्टि से हम चीज़ों को न देखें, बल्कि हम यदि उन्हें सम्यक् दृष्टि से देख सकें तो सृष्टि की समस्त वस्तुएँ न केवल यह कि प्रभु का गुणगान करती हुई दिखाई देंगी, बल्कि वे यह भी बता रही होंगी कि उनका प्रभु कैसा और किस स्वभाव का है। वे बताएँगी कि वह कृपण नहीं, दानशील है। वह लुटाना जानता है और लुटाने को पसन्द करता है। उसने जो चीज़ भी बनाई कितनी सुन्दर बनाई। यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि चीज़ों को सुन्दर होना चाहिए। हमारी हर चीज़ सुन्दर हो— विचार भी सुन्दर हों और हमारे भाव और हमारे कर्म भी सुन्दर हों। प्रभु के प्रेम ने हर वस्तु को स्पर्श किया है। उसके स्पर्श से ही हर वस्तु सुन्दर हो गई। चीज़ों की सुन्दरता बताती है कि किसी परम प्रेमी ने उसे स्पर्श किया है। हमारा हाल यह है कि जिस चीज़ को छू दें वह कुरूप हो जाती है। जिस चीज़ को हम हाथ लगाते हैं, उसे बिगाड़कर रख देते हैं। जैसे सुन्दरता से हमें बैर है। हमारे भीतर जड़ता ने

जगह बना ली है, इससे जो हानि पहुँची है वह बहुत बड़ी हानि है। हमारे भीतर जो सुन्दर था, वह नष्ट हो गया। इसके ज़िम्मेदार हम स्वयं हैं।

(3) कर्मों की पवित्रता

हमारे ग़लत दृष्टिकोण के कारण एक तीसरा नुक़सान यह हुआ है कि हमारे कर्मों से पवित्रता जाती रही। हमारे सारे कर्म पवित्र हो सकते थे। लेकिन हमें इसका एहसास ही नहीं कि कर्मों की पवित्रता भी कोई चीज़ है, हमें इसकी भी ख़बर नहीं कि चीज़ों की पवित्रता को आघात कैसे पहुँचता है। हम जो काम भी करें यह समझकर करें कि ईश्वर हमसे यह काम लेना चाहता है। जो काम भी हम करें, चाहे वह अपनी बेटी का विवाह ही क्यों न हो, यह समझकर करें कि वास्तव में अपना काम नहीं कर रहे हैं बल्कि ईश्वर हमसे यह काम लेना चाहता है और उसने हमें इसका सुअवसर प्रदान किया है। यह उसका अनुग्रह है। इसके लिए हम उसके अनुग्रहीत हों और उसके समक्ष आभार प्रकट करें। दिल से उसे धन्यवाद दें। जब कोई काम यह समझकर करेंगे कि वह ईश्वर का सौंपा हुआ काम है तो फिर उस काम के करने का ढंग ही कुछ और होगा। हमें प्रतीत होगा कि हमसे यह काम लिया जाए। यह हमारा सौभाग्य है कि प्रभु ने हम पर दया की और उसने हमसे एक काम लेना चाहा। काम के पीछे इस भाव के आते ही हमारा काम साधारण न होकर असाधारण हो जाएगा। इस प्रकार हम अपने प्रभु से जुड़े रहेंगे और विचार और कल्पना की दुनिया ही में नहीं, बल्कि व्यावहारिक जीवन के स्तर पर भी उससे हमारा मिलाप हो रहा होगा और हमारे कामों में पवित्रता आ जाएगी और अहंकार की मनोवृत्ति से भी हम मुक्त हो जाएँगे।

आज हमारे कामों में पवित्रता नहीं पाई जाती तो यह एक बड़ी कमी है। इस कमी को महसूस करना चाहिए और इस कमी को दूर करने की हमें चिन्ता होनी चाहिए।

32

वास्तविक उपलब्धि

(1) बाह्य

(2) आंतरिक

(3) वयक्तित्व का प्रकाश

क़ुरआन में एक जगह कहा गया है, "लोगो तुम्हारे पास अल्लाह की ओर से एक प्रकाश और स्पष्ट किताब आ गई है।"

एक और जगह कहा गया है, "ऐ लोगो, तुम्हारे पास तुम्हारे रब की तरफ़ से खुला प्रमाण आ चुका है और हमने तुम्हारी तरफ़ स्पष्ट प्रकाश उतारा है।"

एक जगह आया है, "अल्लाह और उसके रसूल पर ईमान लाओ और उस प्रकाश पर ईमान लाओ जिसे हमने उतारा है।"

एक और जगह कहा गया है, "जिसके लिए अल्लाह प्रकाश न जुटाए उसके लिए कोई प्रकाश नहीं है।" (क़ुरआन 4 : 174)

अल्लाह की ओर से अवतरित प्रकाश से लाभान्वित होनेवाले लोग कभी भी जीवन के सच्चे मार्ग से विचलित नहीं हो सकते। वे जानते हैं कि जीवन का वास्तविक उद्देश्य क्या है और उसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है? सत्य मार्ग की कठिनाई भी उनकी दृष्टि में स्वाभाविक होती है, इसलिए वे किसी भी परिस्थिति में हताश नहीं होते। कर्तव्यपथ पर वे निरन्तर आगे बढ़ते रहते हैं। न उन्हें कोई सन्देह होता है और न कोई संकोच। कारण यह कि वे पूर्ण प्रकाश में होते हैं। उनके विचार सत्य होते हैं तथा विचारों में गहराई और उच्चता परिलक्षित होती है। उनकी भावनाओं में ऐसा माधुर्य होता है जिसकी साधारण लोग कल्पना भी नहीं कर सकते। फिर वे कर्मशील होते हैं। वे इस बात को भली-भाँति समझते हैं कि कर्म से भागना किसी मृत्यु से कम नहीं

फिर उनके विचारों, भावनाओं और कर्म में एकात्मता पाई जाती है। ऐसा नहीं होता कि विचार तो अत्यन्त उच्च हों लेकिन कर्म की दृष्टि से वे गिरे हुए हों। उनकी भावनाओं की मधुरता और सरसता उनके जीवन को शुष्कता से सुरक्षित रखती है। वे वास्तव में सशक्त एवं आकर्षक व्यक्तित्व के मालिक होते हैं। यही व्यक्तित्व है जिसका सौंदर्य उनकी चारित्रिक गतिविधियों में दिखाई देता है। यही व्यक्तित्व और चरित्र वह धन है जिसका मुक़ाबला दुनिया की किसी सम्पत्ति से नहीं किया जा सकता।

मनुष्य को जीवन में जो कुछ प्राप्त होता है उसे हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। कुछ चीज़ें ऐसी होती हैं ज़ो बाह्य रूप में उसे उपलब्ध होती हैं जैसे घर, सम्पत्ति, भौतिक सुख, स्त्री और बाल बच्चे आदि। इन ही में साधारणतः लोग आकर्षण महसूस करते हैं। किन्तु एक दूसरी चीज़ जो मनुष्य को प्राप्त होती है उसका सम्बन्ध बाह्य जगत् से नहीं, मनुष्य के अपने व्यक्तित्व से होता है। वास्तव में सबसे बहुमूल्य चीज़ भी यही होती है।

व्यक्तित्व को सामान्यतः शील-स्वभाव और चरित्र आदि शब्दों से परिभाषित करते हैं। अभीष्ट व्यक्तित्व का निर्माण ही इस्लाम का वास्तविक लक्ष्य है। यही कारण है कि क़ुरआन में कहा गया है—

"वह सफल हो गया जिसने अपने व्यक्तित्व को विकसित किया और असफल हुआ वह जिसने उसे दबा दिया।"

व्यक्तित्व के निर्माण के लिए व्यक्ति को क्या कुछ करना चाहिए क़ुरआन में विस्तृत रूप से इस सम्बन्ध में हमारा मार्गदर्शन किया गया है। अभीष्ट व्यक्तित्व के निर्माण से व्यक्ति का जीवन प्रकाशमान हो जाता है। उसके व्यक्तित्व में लेशमात्र को भी अन्धकार दिखाई नहीं देता। उसके जीवन में प्रकाश ही प्रकाश दिखाई देता है। यह प्रक़ाश ऐसा प्रकाश है जिसकी कामना की जाए और जिसकी उपलब्धि के लिए अल्लाह से प्रार्थनाएँ की जाएँ। अभीष्ट व्यक्तित्व के निर्माण के पश्चात् व्यक्ति का जीवन असाधारण हो जाता है। उसके जीवन में एक बड़ी क्रान्ति आ जाती है। वह जहाँ कहीं होता है उसके व्यक्तित्व का प्रकाश उसके साथ होता है। क़ुरआन

में कहा गया है—

"उस दिन तुम देखोगे कि ईमानवाले पुरुषों और स्त्रियों का प्रकाश उनके आगे-आगे दौड़ रहा होगा और उनके दाएँ हाथ में होगा। (कहा जाएगा) आज शुभ-सूचना है तुम्हारे लिए ऐसी जन्नतों की कि जिनके नीचे नहरें बह रही हैं, जिनमें सदैव रहना है। यही बड़ी सफलता है।"

(क़ुरआन, 57:12)

व्यक्तित्व का प्रकाश ऐसा शान्तिदायक प्रकाश होता है कि जिससे बढ़कर किसी सुखदायक स्थिति की कल्पना ही नहीं की जा सकती। यह वह प्रकाश है जिसकी कामना ही नहीं, जिसके लिए प्रार्थना की जानी चाहिए। क़ुरआन में है, "ईमानवालों का नूर उनके आगे-आगे दौड़ रहा होगा और उनके दाएँ हाथ में होगा। वे कह रहे होंगे कि ऐ हमारे रब हमारे प्रकाश को हमारे लिए पूर्ण कर दे और हमें क्षमा कर। निश्चय ही तुझे हर चीज़ की सामर्थ्य प्राप्त है।" (क़ुरआन, 66:8)

अतः स्पष्ट है कि मनुष्य को प्राप्त निधियाँ दो प्रकार की हैं जिनमें से एक का सम्बन्ध बाह्य जगत् से है और दूसरी का आदमी के अपने व्यक्तित्व से या उसके आन्तरिक जीवन से। किन्तु साधारणतः लोग बाह्य जगत् की प्राप्त निधियों में और अन्तर-निहित निधि, जो वास्तव में अत्यन्त मूल्यवान है, से ग़ाफ़िल होते हैं। उनकी महरूमी पर हम जितना दुख प्रकट करें वह कम है।

❖❖❖